ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – 570 006.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

आधुनिक हिन्दी काव्य

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - II

Block - 2

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

प्रथम एम.ए. - कोर्स दो

Course - II, Paper - II

2

''आधुनिक हिन्दी काव्य''

''साकेत''

Unit No. 5 to 8 **Page No.**

अनुक्रमणिका

इकाई	05	साकेत में नारीत्व और साकेत के प्रेरणा	1 - 22
इकाई	06	साकेत की कथावस्तु और एक विवेचन	23 - 66
इकाई	07	गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाएँ और मार्मिक प्रसंग	67 - 84
इकाई	08	महाकाव्य की दृष्टि से साकेत	85 - 102

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति महोदया तथा
संपादकीय समिति के अध्यक्ष
क.रा.मु.वि.विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6

डॉ.कांबले अशोक — संयोजक
अध्यक्ष , हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि.विद्यालय, मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

डॉ.सरगु कृष्णमूर्ति — संपादक
ज्ञानभारती, बेगलूर वि.विद्यालय
बेंगलूर - 56.

पाठ्यक्रम की लेखिका

बी.जी.चन्द्रलेखा
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि.विद्यालय, मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर, शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित । सभी अधिकार सुरक्षित । कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से **रजिस्ट्रार (प्रशासन)** द्वारा मुद्रित व प्रकाशित ।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थी,

कोर्स - एक में आपने **'कर्नाटक संस्कृति एवं कन्नड़ साहित्य'** का अध्ययन किया । इससे कन्नड़ भाषा, लिपि, कर्नाटक की धार्मिक परंपरा और कर्नाटक के मंदिर, कर्नाटक के पर्व और त्योहार, लोक कलाएँ तथा कर्नाटक के प्रमुख राजाओं तथा शासकों का परिचय कन्नड़ साहित्य का काल-विभाजन, 'कविराज-मार्ग' वड्डराधने का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया ।

इसके साथ-साथ आपने कर्नाटक संगीत, कन्नड़ साहित्य के पंपयुग, बसवयुग, वचन-साहित्य, और बसवण्णा, कुमार व्यास युग, दास साहित्य का भी परिचय और ज्ञान प्राप्त कर लिया । कर्नाटक के राष्ट्रकवि कुवेंपु, बेन्द्रे, मास्ति वेंकटेश अय्यंगार आदि प्रमुख साहित्यकारों के बारे में ज़ानकारी प्राप्त कर लीं ।

अब आप **कोर्स - दो** में **'आधुनिक हिन्दी काव्य'** के बारे में अध्ययन करेंगे और कविवर राष्टकवि 'मैथिलीशरण गुप्त', 'जयशंकर प्रसाद', 'रामधरी सिंह दिनकर' और 'सूर्यकांत त्रिपाठी निराला' तथा 'नयी कवियों' के बारे में जानकारी प्राप्त करने जा रहे हैं ।

ब्लाक - एक में आपने गुप्तजी की जीवनी, व्यक्तित्व एवं उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ, मैथिलीशरण गुप्त युगीन हिन्दी काव्य का स्वरूप और विकास और गुप्तजी की कृतियाँ : उनका मूल्यांकन, रामचरितमानस और साकेत - एक तुलनात्मक अध्ययन के बारे में जानकारी प्राप्त किया ।

अब **ब्लाक - दो** में आप साकेत में नारीत्व और प्रेरणा, साकेत की कथावस्तु और एक विवेचन, गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाएँ और मार्मिक प्रसंग और महाकाव्य की दृष्टि से साकेत के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मानस गंगोत्री
मैसूर - 6.

इकाई पाँच : साकेत में नारीत्व और साकेत के प्रेरणा

इकाई की रूपरेखा

5.0. उद्देश्य

5.1. प्रस्तावना

5.2. साकेत का उद्देश्य एवं महत्व

5.3. साकेत में नारीत्व

5.3.1. शिक्षा

5.3.2. वासनेत्तर महत्व

5.4. नारी समर्पण के साथ अधिकार

5.5. नारी त्याग-भावना का सुसज्ज्वल रूप

5.6. नारी का सेवाव्रती रूप

5.7. साकेत के प्रेरणा स्त्रोत

5.8. बोध प्रश्न

5.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में आपने साकेत की कथावस्तु के बारे में अध्ययन किया । इस प्रस्तुत इकाई में आप 'साकेत' की नारी और उसकी विविध रूप के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

5.1. प्रस्तावना

इस इकाई में आप साकेत का उद्देश्य, नामकरण के बारे में भी जान सकते है । इसक्रे अध्ययन के बाद नारीत्व और नारी के महत्व के बारे में भी जानकारी मिलेगी । नारी के विविध रूप का दर्शन भी होता है ।

साकेत का नामकरण

मैथिलीशरण गुप्तजी ने अपने इस ग्रंथ का नाम स्थान विशेष के आधार पर 'साकेत' रखा । गुप्तजी के पहले भी स्थान-विशेष के आधार पर ग्रंथ का नामकरण करने की परंपरा चल निकली थी ।

बंगाला में नवीचन्द्र सेन स्थान विशेष पर नामकरण में हमेशा रुचि लेते थे ; गुप्तजी पर उनका प्रभाव पड़ा था । कवि दिनकर भी **'कुरुक्षेत्र'** नाम से एक स्थान-विशेष काव्य लिख चुके थे । गुप्तजी **'साकेत'** को ही अयोध्या एवं अवध मानते हैं -

क्या ही विचित्रता चित्रकूट ने पायी ।
संपूर्ण अयोध्या जिसे खोजती आयी ।'

जब साकेतवासियों ने चित्रकूट पहुँचते हैं तब अयोध्या की लक्षणा का अर्थ अयोध्यावासी हैं । गुप्तजी साकेत, अयोध्या और अवध-तीनों को एक मानते हैं । अयोध्या त्रेतायुग के बाद की नगरी नहीं है -

'स्वर्गोपरि साकेत, राम का धाम तू,
रक्षित रख निज उचित अयोध्या नाम तू ।'
(पंचम सर्ग)

x x x x

'हो जाये अवधि मय अवध अयोध्या अबसे '

(अष्टम सर्ग)

x x x x

'अवध की ओर अपना कर त्याग से,
वह तपोवन सा प्रभु ने किया ।'

(नवम सर्ग)

गुप्तजी साकेत के अंतर्गत संपूर्ण अयोध्यावासियों के अर्थ को भी समाहित करते हैं । समस्त अयोध्यावासी, साकेत-समाज सभी इसी के अंतर्गत आते हैं -

'चल चपल कलम निज चित्रकूट चल देखें ।
प्रभु चरण-चिन्ह पर सफल भाल ' लिपि लेखें ।
संप्रति साकेत समाज नहीं वहीं हैं सारा,
सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा ।'

साकेत को लक्ष्य करते हुए समीक्षक प्रवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है - 'साकेत की सीमा में गुप्तजी चित्रकूट को भी सन्निविष्ट करते हैं । .... साकेत तो प्रागैतिहासिक नगरी थी, जो त्रेता तक इस धरातल पर रही, तदुपरांत स्वर्ग चली गयी और उसके स्थान पर 'अयोध्या' की सृष्टि हुई । साकेत नगरी के अतिरिक्त किसी साकेत-प्रान्त की कल्पना ऐतिहासिक नहीं है ।' वाजपेयीजी का मत भी 'साकेत' शीर्षक के विपक्ष में हो जाता है ।

श्री रामस्वरूप दुबेजी का विचार है कि गुप्तजी चित्रकूट को भी 'साकेत' की सीमा के अंतर्गत मानते हैं । उनका तर्क यह नहीं है कि चित्रकूट अयोध्या का एक अंग है, अपितु संपूर्ण साकेत समाज वहीं होने के कारण उन्होंने साकेत के अंतर्गत उस प्रसंग को लिया । साकेत शीर्षक या नामकरण के बारे में विद्वानों में मत भेद है ।

श्री शंभूप्रसाद बहुगुण का विचार है - 'साकेत में पाठकों का ध्यान सबसे पहले ग्रन्थ के नाम की ओर आकृष्ट होता है । कवि ने

इसे साकेत कहा है । ग्रंथ के कथानक को देखकर रामायण कथानक की याद आ जाती है । 'साकेत' एक प्रकार से 'मानस' तथा 'रामचंद्रिका' का सूरसागरीय छायारूप है । रामचरित का जो गान 'मानस' में किया गया है, 'रामचंद्रिका' में अलंकारों और छंदों का जो चमत्कार दिखाया गया है, सूरसागर में जो गोपी-उद्धव संवाद चित्रित हुआ है, उसी का दूसरे रूप में चित्रण 'साकेत' में हैं, कुछ घटनाएँ बढ़ा दी गयी है और कुछ अपेक्षाकृत बढ़ा दी है और कुछ को इतना संक्षिप्त कर दिया गया है कि घटना का गला-सा घुट गया है । फिर भी राम से संबंध रखनेवाली घटनाओं का उल्लेख किया गया है, यद्यपि राम के चरित्र की प्रधानता कहीं भी नहीं है ।'

डॉ.नगेन्द्र ने 'साकेत' के नामकरण के विषय में यह मन्तव्य दिया है - 'स्थान-ऐक्य का साकेत की कथावस्तु में बड़ा सफल प्रयोग है और साथ ही साकेत का नाम भी पूर्णरूप से सार्थक होता है । .... साकेत में जाकर राम सीता की कहानी प्रधानतः उर्मिला की कहानी बन जाती है, उसी रूप में उसका विकास और संगठन राम-कथा की पृष्ठभूमि पर होता है ।'

कुछ विद्वान शीर्षक के पक्ष में है और कुछ विपक्ष में भी । पर यह बात सत्य तो है कि इस ग्रन्थ का नाम 'साकेत' सर्वथा उपयुक्त है ।

गुप्तजी का उद्देश्य उपेक्षिता नारियों के महान चरित्र पर प्रकाश डालना था । उर्मिला, कैकेयी, माण्डवी, सुमित्रा आदि पर कवि ने प्रकाश डाला है ।

गुप्तजी वैष्णव भक्त होने के नाते राम के चरित्र पर प्रकाश डाला है । इसलिए उन्होंने लिखा है -

'राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाये सहज संभाव्य है ।'

राम का चरित्र अवश्य गाया है किन्तु प्रसंग वश । अगर गुप्तजी का अभीष्ट सिर्फ राम-कथा गाना ही था, तो 'रामचरितमानस'

या 'रामचन्द्रिका की तरह राम-जन्म से कथा का आरंभ करते, किन्तु गुप्तजी ने कथा का आरंभ 'साकेत' के वर्णन से किया है और सर्वप्रथम नायिका उर्मिला को सामने लाया है । कथा का आरंभ उर्मिला से शुरू होकर अंत भी उर्मिला-लक्ष्मण मिलन प्रसंग में हुआ है ।

कुछ विद्वानों का मत है कि यदि कथानक उर्मिला से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध है तो फिर ग्रंथ का नाम **'उर्मिला'** अथवा **'उर्मिला संताप'** आदि क्यों नहीं रखा गया ?

इसका कारण यह है कि गुप्तजी ने यद्यपि उर्मिला के चरित्र को प्रमुखता दी हे, तथापि उसका चरित्रांकन ही उनका लक्ष्य नहीं था, अपितु अन्य उपेक्षताओं के चरित्र कैकेयी, मांडवी, सुमित्रा आदि के प्रति भी उनकी सहानुभूति थी । वातावरण की आवश्यकता के हेतु संपूर्ण साकेत का संयोजन आवश्यक था ।

गुप्तजी ने संपूर्ण कथा को साकेत के अंतर्गत ही सन्निहित कर दिया है । राम सात सर्गों तक साकेत में रहें, तो उनसे संबंधित घटना-क्रम बदलकर उर्मिला की ओर उन्मुक्त हो जाता । आगे की कथा भी साकेत से बाहर नहीं जाती । शूर्पणखा के नासिका - छेदन की कथा को एक व्यापारी साकेत में सुना देते हैं - लक्ष्मण की शक्ति और मूर्छा तक की कथा हनुमान सुनाते हैं आगे की कथा वशिष्टजी योग दृष्टि से दिखाते हैं । इसका मतलब यह हुआ कि सभी घटित-घटनाएँ साकेत की हैं, इसी से साकेतवासियों की रण-सज्जा का सुन्दर और मार्मिक चित्रण करके मांडवी और सुमित्रा के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है ।

श्री रामस्वरूप दुबे का कथन द्रष्टव्य है - 'उर्मिला की दशा और भावनाओं का वर्णन करने के लिए, उसका चरित्र अधिकाधिक प्रकाश में लाने के लिए यह आवश्यक था कि उर्मिला की गतिविधि पर निरंतर दृष्टि रखी जाये । उसके आनन्दोच्छ्वासों, आहों और आँसुओं का याथातथ्य वर्णन किया जाये । ऐसा करना तभी संभव था,

जब कवि उर्मिला के दिन-रात के निवास-स्थान को केन्द्र बनाता । उर्मिला का साथ भी किसी समय न छूटे, इसलिए कवि जब सब साकेत-समाज के साथ चित्रकूट गया तब भी उर्मिला को साथ ही ले गया ।'

'साकेत' नाम की उपयुक्ता के विषय में स्वयं श्री मैथिलीशरण गुप्त के विचार भी उल्लेखनीय हैं । वे लिखते हैं - **'मैंने अपनी रचना का नाम साकेत रखा है । इससे मुझे उसमें सब के दर्शन की सुविधा मिल गयी है । ..... यह सुविधा मुख्यतः उर्मिला की अनुभूति और अपनी रचना में कुछ नवीनता की इच्छा पर ही साकेत का अस्तित्व है ।'**

यदि ऐसा माना जाये कि गुप्तजी वैष्णव भक्त होने के नाते राम-कथा का गाना करना था तो भी 'साकेत' नाम सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि राम 'साकेत' में समाहित हो गया है और साकेत राम में । जब दोनों एक ही हैं तो भिन्न कैसे ? राम स्पष्टतः कहते है -

'राज्य जाये, मैं आप चला जाऊँ कहीं,
जाऊँ अथवा लौट यहाँ आऊँ नहीं ।
रामचन्द्र भव-भूमि अयोध्या का सदा,
और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा ।'

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'साकेत' सर्वथा उपयुक्त है ।

5.2. साकेत का उद्देश्य एवं महत्व

'साकेत' आधुनिक हिन्दी साहित्य की अत्यन्त चर्चित कृति हैं । 'साकेत' के अनेक पहलुओं पर विद्वानों में मत भेद है । उदाहरण के लिए 'साकेत' के उद्देश्य पर इन विद्वानों के अभिप्रायों को देख सकते हैं - डॉ.नगेन्द्र के अनुसार - 'साकेत' में राम भक्ति है यही उसकी मुख्य प्रेरणा है और दूसरे भारतीय जीवन को समग्र रूप से देखने और समझने की लालसा ।''

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - ''कवि का आशय आरंभ से ही प्रकट हो जाता है कि रामायण की बाल लीलाओं को छोड़कर उर्मिला और लक्ष्मण के चरित्रों को प्रमुखता देना चाहता है ।''

डॉ.रवीन्द्र सहाय वर्मा - ''नारीत्व के प्रति उच्च भावना के दर्शन हमें मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में मिलते हैं । वे अधिकतर कवियों द्वारा उपेक्षिता नारियों को अपने काव्य का विषय बनाते हैं और उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित करते हैं ..... । उनके **'साकेत'** की **उर्मिला** और **कैकेयी 'यशोधरा'** की **यशोधरा** एवं **'द्वापर'** की **विधृता** उन में ऐसे नारी चरित्र हैं । गुप्तजी के.'साकेत' के मूल में उपेक्षित उर्मिला के साथ न्याय करने की भावना ही प्रधान है ।''

'साकेत' के मुख्य उद्देश्य निम्न लिखित हैं -

1. उर्मिला का नायकत्व और उद्धार
2. गाँधीवादी की व्याख्या
3. रामोपासना
4. कैकेयी का पश्चाताप
5. राम कथा में मनोविज्ञान
6. महाकाव्य वर्णन की नवीन शैली
7. विश्वबंधुत्व की भावना का विकास

साकेत में विशेष परिस्थितियों का प्रभाव

साकेत का रचना काल सन् 1924 से लेकर 1932 तक का है । इस काल में डॉ.ईश्वर चन्द्र देसाई के अनुसार -

'यह काल दोनों विश्व युद्धों के मध्य का काल है तथा भारत के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास और विस्तार का काल रहा है । इस काल में देश के समाज, राजनीति, अध्यात्म, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में पुनरुत्थान का संचार हो रहा था ।' **राष्ट्रीय आन्दोलन** -

जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे ।
हम को गौरव, गर्व तथा निज मान दे ।

व्यक्ति और समाज -

साहचर्य के धर्म से भी ज्येष्ठ,
आयु भर स्वामी स्मरण है श्रेष्ठ ।

नारी-गौरव की प्रतिष्ठा -

अवस अबला तुम ? सफल बल वीरता,
विश्व की गंभीरता धुर धीरता ।
बाले, तुम्हारी एक बाँकी दृष्टि पर,
मर रही है जी रही है सृष्टि भर ।

अवतारी रूप को मानवीयता प्रदान करना -

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।

मनोवैज्ञानिकता

कैकेयी के प्रति न्याय करके राम से कहलाया है -

पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई ।
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई ।

5.3. साकेत में नारीत्व

गुप्तजी ने साकेत में नारीत्व का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । साकेत में पात्र यद्यपि प्राचीन काल के हैं किन्तु नारी पात्र आधुनिक युग के विचारों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं । उपेक्षिता कैकेयी-उर्मिला की व्यथा-कथा का मनोवैज्ञानिक ढंग से निरूपण करना इसी युग का प्रभाव है ।

'साकेत' में नारी-भावना हमें निम्न-रूप में दिखायी देती है, जो आधुनिक युग से प्रभावित भी है और प्राचीन में खपती भी है ।

5.3.1. शिक्षा

पहले नारी का ध्यान सिर्फ़ पति-सेवा, सास-ससुर की सेवा घर-गृहस्थी संभालने के प्रति था पर 'साकेत' की नारी शिक्षित है और अपनी शिक्षा का उपयोग भी करती है ।

स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ठ, उद्योग सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी ।

साकेत का राज-परिवार की नारियाँ पढ़ा-लिखा है और पौरजन भी ।

उर्मिला सिर्फ शिक्षित ही नहीं है, बल्कि अन्य ललित कलाओं में प्रवीण भी है -

चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ से सौमित्र भी ।

उर्मिला पति-वियोग काल में भी अपनी शिक्षा का सदुपयोग करना चाहती है - वह एक शाला खुलवाकर सब लोगों को सिखाना चाहती है -

मैं ललित कलाएँ भूल न जाऊँ वियोग वेदना में,
सखि पुरवाला शाला खुलवाएँ क्यों न उपवन में ।

5.3.2. वासनेतर महत्व

भोग नारी-जीवन का एक अंग है और पति की प्रिया है, पति ही उसका जीवन है । पर यह प्रेम वासना जन्य ही नहीं है । इस में पति-पत्नी के हास-परिहासमय जीवन की झलक भी दिखायी देती है । उर्मिला पति को दास भी कहलाने में नहीं हिचकाती और स्वयं अपने को दासी मानती है । आज की नारी दासी नहीं, सहधर्मिणी है - इसलिए जब लक्ष्मण उर्मिला से ऐसा कहता है -

'किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ ।'

तब उर्मिला तुरंत इसका प्रतिवाद करती हुई कहती है -

'दास बनने का बहाना किसलिए ?
क्या मुझे दासी कहाना इसलिए ?

भारत की नारी हमेशा पुरुष के प्रति समर्पित होकर उसकी छत्र-छाया चाहती है । नारी के हृदय रूपी देव-मंदिर में पति रूपी भगवान को स्थापित रखे रहना चाहती है और स्वयं पति के हृदय की देवी बनना चाहती हैं -

'तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा,
मैं तुम्हारा हूँ प्रणय सेवी सदा ।'

इसलिए लक्ष्मण उर्मिला की भावना के अनुकूल ही कहा है ।

पति के वियोग में उर्मिला अपना वह आदर्श प्रस्तुत करती है जो आज के हर एक नारी के लिए अनुकरणीय है । उर्मिला समग्र नारी जाति को वासना से दूर, कर्तव्य-परायण, उत्कृष्ट सामाजिक जीवन का संदेश देते हुए धर्म का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है जिससे भारतीय संस्कृति गौरवान्वित हो उठती है ।

5.4. नारी समर्पण के साथ अधिकार

गुप्त जी की नारी एक ओर तो पति के प्रति समर्पित है, उसके जीवन से अपनी जीवन बाँधा है, तो दूसरी ओर वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी है । जीवन को विविध रूपों में देखती है । चाहे उर्मिला हो, सीता हो, कैकेयी हो या सुमित्रा हो या कौसल्या सभी नारियाँ अधिकारों की सीमा के प्रति सहज जागरूक हैं । सुख-दुःख दोनों में भी सहयोगिनी है । सीता भी अर्धांगिनी के अधिकार के प्रति सजग हैं । राम के वन-गमन के समय पर, जब सीता को घर रहने के लिए कहा जाता है, तब वह कहती है -

'समझो मुझको भिन्न न हा ।
करो ऐक्य उच्छिन्न न हा ।
तुमको दुःख जो मुझको भी,
तुमको सुख तो मुझको भी ।'

उर्मिला भी लोक कल्याण के लिए भारतीय नारी का त्यागी रूप प्रस्तुत करने में अपने शरीर को और आकर्षक रूप को व्यर्थ समझती है । कर्तव्य के आगे प्रेम महत्वपूर्ण नहीं है । वह कहती है -

हे नाथ ! साथ दो भ्राता का,
बल रहे मुझे उस प्राता का ।
है त्राण आज भी इष्ट मुझे,
यह प्राण आज भी इष्ट मुझे ।
रह कर वियोग से अस्थिर भी,

देखूँ मैं तुम्हें यहाँ फिर भी ।'
है प्रेम स्वयं कर्तव्य बड़ा,
जो खोज रहा है तुम्हें खड़ा ।
यह भ्रातृ-स्नेह न आना हो,
लोगों के लिए नमूना हो ।'

साकेत में चित्रकूट में भी सीता के द्वारा एक क्षण के लिए उर्मिला का मिलन लक्ष्मण से होता है । तब भी कर्तव्य का त्यागमयी मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत करके पाश्चात्य सभ्यता में पली नारी के लिए एक आदर्श नारी चित्र की परिकल्पना ज्ञात होती हैं ।

5.5. नारी त्याग-भावना का सुसज्ज्वल रूप

गुप्तजी के साकेत की नारियों की यह मुख्य विशेषता है कि प्रत्येक नारी त्याग का अनुपम उदाहरण सामने रखती है । गुप्तजी की नारियाँ त्याग-वृत्ति प्रधान हैं । उन्हें सुखोपयोग से जरा भी मोह नहीं है, उनका जीवन सर्वप्रथम पति के लिए है और उसके बाद पुत्र के साथ-साथ समस्त विश्व के लिए ।

उर्मिला पति को चौदह साल वन भेजती है और राजमहल को ही वन समझ कर कठोर जीवन व्यतीत करती है । माण्डवी का त्याग भी कम नहीं । भरत समस्त सुख छोड़कर तापसी जीवन बिता रहा है उसी प्रकार माण्डवी भी बिता रही है । भरत राम के लिए उदास है तो माण्डवी सबको उदास देखकर वह भी उदास है ।

सुमित्रा के त्याग की बात तो कम नहीं है । वह भ्रातृ सेवा के समक्ष वात्सल्य को तुच्छ समझती है । उसका एक पुत्र लंका के युद्ध स्थल में मृतकवत् है तो दूसरा पुत्र शत्रुघ्न को रण-भूमि में राम-सेवा के लिए भेजी है । पुत्र माता की संपत्ति है । फिर भी साकेत की नारियाँ कर्तव्य और त्याग के सम्मुख सब संपत्ति को भूल गए हैं । जब कौशल्या तो शुत्रुघ्न को पकड़कर बैइ जाती है । तब सुमित्रा कहती है -

'जीजी, जीजी, उसे छोड़ दो, जाने दा तुम,
सोदर की गति अमर-समर में पाने दो तुम ।'

बेटा शत्रुघ्न से कहती है -

'जा भैया, आदर्श गए देते जिए पथ से,
कर अपना कर्तव्य पूर्ण तू इति तक अथ से ।'

कैकेयी का भी आदर्श किसी भी प्रकार कम नहीं है । यद्यपि राम को वह वनवास दे देती है । किन्तु साथ ही साथ उसे पश्चात्तप भी होता है तो वह उसे सदैव-सदैव के लिए सात्विकता में परिवर्तित कर देना चाहती है । 'चित्रकूट' के प्रसंग में वह राम से नाना भाँति विनय करती है । पुत्र वात्सल्य के कारण पुत्र भिक्षा भी माँगती है । वह राम से कहती है यदि भरत उसका पुत्र है तो वह राम को लौटने के लिए कह देती है -

यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को ।
x x x x x x
हाँ जन कर भी मैंने भरत को न जाना,
सब सुन ले तुमने स्वयं अभी वह माना ।
यह सच है तो फिर लौट चलो फिर मैया,
अपराधिनी मैं हूँ तात तुम्हारी भैया ।

कैकेयी के चरित्र को आगे हम विचार करेंगे ।

5.6. सेवाव्रती रूप

गुप्त जी की नारियाँ सेवा-व्रती भी हैं । आज की नारी (आधुनिक नारी) तो समाज सेवा में ही आगे बढ़ रही है और घर-गृहस्थी-परिवार सेवा की ओर उसका ध्यान नहीं जाता । उसमें पुरातण पंथी पन दिखाई देता है । पर साकेत में नारी परिवार तथा समाज दोनों के प्रति सेविका बनी है । वह सबकी कल्याणकामना से अभिभूत है ।

नारी : प्रेरणा का स्रोत

नारी पत्नी भी है, प्रेमिका भी है, माता भी है और प्रेरणादात्री

भी । अगर नारी चाहे तो हँसते-हँसते हुए पुत्र और पति को अवसर आने पर युद्ध-क्षेत्र में भेज देती है, रण-क्षेत्र में भेजते वक्त उन्हें यह मालूम है कि विजय होकर वापस आते है नहीं तो मृत्यु का आलिंगन कर लेते है ।

नारी का वात्सल्यमयी रूप

नारी वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है । नारी कितना ही त्याग करने पर भी वह माता भी है । वात्सल्य का सागर पुत्र के लिए अपार है । उदा : गुप्तजी के साकेत में कैकेयी का समस्त षड्यंत्र पुत्र-वात्सल्य से प्रेरित है । पुत्र कल्याण के हेतु वह पति तक खो बैठती है ।

गुप्तजी की नारी कभी रणचंडी बनती है तो कभी वात्सल्य माता भी । कभी प्रेम में पगी प्रिय बनती है तो कभी त्यागमयी नारी । यदि सेवा-भावना का उत्कर्ष है तो वियोग विधा भी कम नहीं, कभी वह पति तक उपेक्षा कर देती है और कभी आदर्श के लिए पुत्र तक रण-रंग में भेज देती है । गुप्तजी की नारी प्राचीन नारी की तरह दबा-ढ़का नहीं है, अपितु वह आधुनिक नारी की तरह पुरुष के साथ पग धरती है ।

5.7. साकेत के प्रेरणा स्त्रोत

प्रत्येक रचना के पीछे उसके रचयिता का कोई उद्देश्य होता है । **'नाना भाँति राम अवतार'** होने पर, अनेक प्रकार से राम-कथा लिखी जाने पर भी 'साकेत' का प्रणयन किया गया, इसका कारण था राम-कथा को नवीन परिवेश में आँकना, कुछ उपेक्षिता नारियों के जीवन का विधिवत् चित्रण करना ।

कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है और किसी न किसी प्रकार से युगीय प्रभाव को अपने में अपना लेता है अगर ऐसा न हो तो वह किसी प्रकार भी सद्साहित्य सृजन न कर सकता और न मानव जीवन प्रभावित ही होता जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि क्रौंच पक्षी के हताहत रूप से व्याकुल हुए थे और उनके मुख से निकल पड़ा था -

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम् गमः सारस्वती समा ।
क्रौंच यत् मिथुनः टेकम् वधी काम मोहितम् ।

किन्तु वही वाल्मीकि जी उर्मिला की दशा को बिलकुल भूल गए थे ।

भारत एक ऐसा महान् देश है जिसमें सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास में रामायण और महाभारत जैसे काव्यों का अपना विशिष्ट योगदान है । इन दोनों काव्यों के विभिन्न प्रसंगों को लेकर समय-समय पर हमारे कविलोगों ने काव्य सृजन किया है और उन प्रसंगों में नए-नए अर्थों का आविष्कार भी किया है । रामायण और महाभारत सामाजिक मर्यादाओं की मूल संपत्ति है । भारतवर्ष में शायद ऐसी कोई भाषा न हो जिसमें रामायण-महाभारत के प्रसंगों का पुनरुज्जीवन न हुआ हो !! रामायण और महाभारत न केवल भारतवासियों के लिए है अपितु मानवकोटि के सम्मुख सदा सर्वदा के लिए शाश्वत मूल्यों को प्रस्तुत करने वाले काव्यरत्न हैं ।

कविवर मैथिलीशरण गुप्तजी को अपने काव्य गुरु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से कविलोगों से उपेक्षित उर्मिला का संदेश मिला तो वह 'साकेत' के सृजन की प्रेरणा बनी । इसके काव्य में कवि गुप्तजी ने उर्मिला की कठोर साधना, आदर्शमयी मानव सेवा, प्रेरणादायक त्याग के साथ-साथ उसके चरित्र को भी निखारा गया है । दूसरी बात उन्होंने राम भक्ति को भी किसी न किसी बहाने से एक काव्य में भरना चाहते थे और वह काव्य बन गया साकेत । साकेत में उन्होंने लिखा है -

राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाए सहज सम्भव्य है ।

साकेत की रचना के पीछे निश्चय ही कोई न कोई प्रेरक बिन्दु होगा, जिसने कवि को इसके प्रणयन की ओर उन्मुख किया होगा ।

डॉ.नगेन्द्र का विचार है कि 'साकेत के सृजन के पीछे एक निश्चित सुन्दर पृष्ठ-भूमि है । .... आज से अनेक वर्ष प्राचीन साहित्य का अध्ययन करते-करते एक दिन कवीन्द्र रवीन्द्र का हृदय काव्य के कुछ कोमल नारी चरित्रों की निर्मम उपेक्षा देखकर सहसा विचलित

हो उठा और आदि कवि के मुख से **'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वं .....'** की भाँति ही उसकी लेखनी से भी **'काव्येर उपेक्षिता'** शीर्षक लेख निकल पड़ा । इसके कुछ दिन बाद स्वर्गीय आचार्य द्विवेदी को भी उस पर दया आई और उन्होंने भी **'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता'** विषय पर निबन्ध लिखा ।

युवक कवि मैथिलीशरण गुप्त उन दिनों आचार्य के चरणों में बैठा हुआ अपनी स्वर-साधना कर रहा था । वह भारत-भारती, जयद्रथ-वध आदि का यशस्वी लेखक घोषित हो चुका था, परंतु ये तो उसके लक्ष्य के मार्ग की मंजिलें ही थीं । वह राम का भक्त रामचरित पर दृष्टि गड़ाये हुए एक ऐसा काव्य लिखने को व्यग्र था जिसमें अपनी कवि जीवन की अखण्ड तपस्या के सार को समाहित कर सके । निदान उसकी आँखें चारों ओर घूमती हुई इन दो निबंधों पर कुछ देर को अटक गई, इसमें भी क्या संदेह है कि रवीन्द के शब्दों में उसे पर्याप्त प्रकाश मिला । काव्य रचना प्रारंभ हो गई ।''

- साकेत एक अध्ययन - डॉ.नगेन्द्र, पृ.1

आधुनिक भारतीय साहित्य में कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पहली बार उस नवोढ़ा और विरहिणी उर्मिला देवी के महान व्यक्तित्व की मर्मांतक पीड़ा को अपनी कवि सहज हृदय से समझा और प्राचीन महाकवियों से उर्मिला देवी के प्रति दिखाई गई उदासीनता के प्रति आश्चर्य प्रकट करके उसके सहज निर्मल व्यक्तित्व के प्रति हार्दिक सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट की । वैसे स्वयं रवीन्द्र स्वाभावतः भावुक थे । उनका भावुक हृदय नारी के वेदनामय जीवन के प्रति इन शब्दों में उद्‌गार करता है -

'Woman thou hast enriched the words' heart with the depth of thy tears at the Sea has the earth.'

'अर्थात् हे नारी ! अपने आँसुओं की गहराई से तुमने लोक हृदय को ऐसा घेर लिया है जैसे सागर ने धरती को ।'

उर्मिला के व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट होने के पीछे जो कारण है उन्हें कवीन्द्र रवीन्द्र ने इन शब्दों में प्रकट किया है -

'यों मैं सोचता हूँ तो उसका एक कारण है । संस्कृत में इतना मधुर नाम दूसरा कोई है ही नहीं । इसलिए उर्मिला देवी को यह नाम देने के उपलक्ष्य में वाल्मीकि के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ । कवि गुरु ने उसके प्रति बहुत ही अन्याय किये है लेकिन अदृष्टवशात् उसको मांडवी या श्रुतकीर्ति नाम न देकर 'उर्मिला' नाम दिया है और यही एक विशेष सौभाग्य की बात है ।'

'जिस समय उर्मिला ने अपने उज्ज्वल ललाट में सिन्दूर बिन्दु धारण किया था, उसी दिन की नव-वधू वह सदा बनी रही । किन्तु जिस राम-राज्याभिषे के मंगल साधनों का आयोजन करने में अंतःपुर वासिनी ललनाएँ लगी हुई थीं, वह नव वधू क्या अपना घूँघट उठाकर रघुकुल लक्ष्मियों के साथ प्रसन्न मुख से मंगल रचना में व्यस्थ न थी ? और जिस अयोध्या में अंधेरा करके तपस्वियों का वेश बनाए दोनों राजकिशोर सीता को साथ लेकर वनवास के लिए बाहर हुए, उस दिन वधू उर्मिला राजप्रसाद के किस एकान्त कक्ष में, वृन्तव्युत कलिका की भांति धूल में लोट रही थी, यह क्या कोई जानता है ? उस दिन के उस विश्वव्यापी विलाप के भीतर इस विदीर्यमाण क्षुद्र तथा कोमल हृदय के असह्य शोक को किसनें देखा ? '

'लक्ष्मण ने अपना अस्तित्व राम के लिए एक दम खो दिया था, वह गौरव कथा आज भी भारत में घर-घर कहीं जाती है, सीता के लिए उर्मिला अपना अस्तित्व खोना, केवल संसार में ही नहीं, काव्य में भी उपेक्षित ही रहा है । लक्ष्मण ने अपने दोनों देवताओं सीता-राम के लिए अपने को ही उत्सर्ग किया और उर्मिला ने अपने अपेक्षा से भी अधिक स्वामी को समर्पण किया । काव्य में वह कथा न लिखी गई । सीता के आँसुओं के जल से उर्मिला एकदम पूँछ गई ।'

महाकवि वाल्मीकि ने अपनी कल्पना शक्ति के करुण-जल को पूर्णरूप से जनकसुता (सीता देवी) के पुण्याभिषेक में ही उड़ेल दिया हैं । कांतिहीन मुखवाली, समस्त ऐहिक सुखों से वंचिता सीतादेवी की छाया में अवगुंठनवती हो खड़ी और एक राजकुमारी (वह भी जनकसुता ही है) के चिर दुःखतप्त नम्र ललाट पर, न जाने क्यों

कवि ने अपने कमंडल के जल की एक बूँद तक न छिड़कायी । ओह अप्यक्त वेदना, उर्मिला देवी ! उषाकाल में दर्शनीय नक्षत्र की भांति उस महाकाव्य के मेरु शिखर में सिर्फ एक बार तुम गोचर हुई, बाद को उस अरुण कांति में ऐसी ओझल हुई कि तुम्हारे फिर दर्शन नहीं हुए । तुम्हारा उदयाचल कहाँ ? यह जानना भी सबके सब भूल बैठे हैं ।'

आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा लिखे गए लेख 'कवियों की काव्य विषय उदासीनता' के कुछ प्रमुख अंश इस प्रका है -

'तुलसीदास ने भी उर्मिला पर अन्याय किया है । आपने इस विषय में आदि कवि का अनुकरण किया है । **'नाना पुराण निगमागम-सन्मत'** लेकर जब रामचरित मानस रचना करने की घोषणा की थी तब वहाँ पर आदि काव्य को अपने वचनों का आधार मानने की कोई जरूरत न थी । आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को उर्मिला से न मिलने दिया । माता सुमित्रा से मिलने के बाद झट कह दिया **'गए लखन जहाँ जानकी नाथ ..... ।'**

'हाँ भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है । राम, लक्ष्मण और जानकी के वन से लौट आने पर भवभूति को बेचारी उर्मिला एक बार याद आ गई है । चित्रुपठ पर उर्मिला को देखकर सीता ने लक्ष्मण से पूछा - **'इयमपरा का ? अर्थात् यह दूसरी कौन है ?** इस प्रकार से देवर से पूछना कौतुक से खाली नहीं, इसमें सरसता है । लक्ष्मण इस बात को समझ गए । वे कुछ लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे उर्मिला को सीता देवी पूछ रही है । उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही उर्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया । उनके हाथ से वह ढक गया । कैसे खेद की बात है कि उर्मिला का उज्ज्वल चरित्र-चित्र, कवियों के द्वारा भी आज तक उसी तरह से ढकता आया है ।'

'कवि स्वभाव से ही उच्छृंखल होते है । वे जिस तरफ झुक

गए, झुक गए । अगर जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया, जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठाकर न देखा । यह डच्छृंखलता या उदासीनता सर्वसाधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदिकवि वाल्मीकि तक इससे नहीं बचे । क्रौंचपक्षी के जोड़े में से एक पक्षी को निषाद द्वारा वध किया हुआ देख जिस कविशिरोमणि का हृदय दुःख से निवीर्ण हो गया और जिसके मुख से **'मा निषाद'** इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी, वही पर दुःखकातर मुनि, रामायण निर्माण करते समय एक नव परिणीता दुःखिनी वधू को बिलकुल भूल गया । विपत्ति विधुरा होने पर उसके साथ अल्पादल्पतरा समवेदना तक उसने प्रकट न की उसकी खबर तक न ली ।'

'लक्ष्मण ने अकृत्रिम भ्रातृ स्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया । उन्होंने राजपाट छोड़कर अपना शरीर रामचन्द्र को अर्पण किया । वह बहुत बड़ी बात थी पर उर्मिला ने इससे भी बड़कर आत्मोत्सर्ग किया । उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति को राम-जानकी के लिए दे डाला और आत्म-सुखोत्सर्ग उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था । उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ दो डाला । जो सुख उसे विवाहोत्तर मिलता, उसकी बराबरी चौदह वर्ष पति-वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता । नवोढत्व को प्राप्त होते ही जिस उर्मिला ने रामचन्द्र और जानकी के लिए अपने सुख सर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अनादर्शी आदिकवि के शब्द भंडार में दरिद्रता ? '

सीता और उर्मिला का मूल मीभिला था । इन दोनों के संस्कार एक ही थे । पति के प्रति अपना समर्पण करना इन दोनों को उसी घर में मिली थी । उसी घर में सीता देवी की सम्मति - **'जहाँ लगी नाथ नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहि तरनि न नाते'** उर्मिला की क्या यह भावना न थी ? जरूर थी । दोनों एक ही घर की थीं । उर्मिला भी पति-परायणता धर्म को अच्छी तरह जानती थी, पर उसमें

लक्ष्मण के साथ वनगमन की बात जान बूझकर नहीं की । यदि वह भी साथ जाने को तैयार होती तो लक्ष्मण को अपने से बड़े राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता और उर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य-युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते । यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महत्ता की बोधक है । वाल्मीकि को ऐसी उच्चाशय रमणी का विस्मरण होते देख किस कविता-मर्मज्ञ को आंतरिक वेदना न होगी ? '

'सरस्वती सम्वाद' के **'महाकाव्य विशेषांक'** निकलने के अवसर पर पत्रिका के संपादक डॉ.शम्भुनाथ पाण्डेय ने गुप्तजी को पत्र लिखकर उनसे यह अनुरोध किया था कि **'साकेत की प्रेरणा के स्त्रोत'** पर कृपया स्वयं प्रकाश डालें । उस पत्र का उत्तर भी गुप्तजी ने इस प्रकार दिया था -

6, नार्थ-एवेन्यु, नई दिल्ली
22.4.71

प्रिय महाशय,

पत्र मिला । धन्यवाद । अपने विषय में स्वयं क्या कहूँ । इष्ट देव के विषय में कुछ लिखना ही था । **'साकेत'** लिख गया, कैसे लिख गया, इसे आप लोग ही जानें ।

कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ ।

भवदीय,

मैथिली शरण

गुप्तजी के इस सूत्रप्रधान पत्र पर अपने विचार प्रकट करते हुए **'सरस्वती सम्वाद'** के उसी **'महाकाव्य विशेषांक'** में डॉ.पाण्डेय ने लिखा था कि गुप्तजी राम भक्त संत हैं । अतः उनके स्वभाव से वही दीनता, वही निरभिमान और शालीनता है जो संतों का सहज स्वभाव है । आपका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जो परंपरा में वैष्णव था । अतः श्रद्धा और विश्वास उनको बचपन से ही विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था ।

'साकेत' में हम जिस रामचरित के दर्शन करते हैं, उसमें आधुनिकता की छाप अवश्य है, किन्तु उसकी आत्मा में राम के आधिदैविक रूप की ही झांकी है और वही 'साकेत' की मूल प्रेरणा है । जिस युग में राम के व्यक्तित्व को ऐतिहासिक महापुरुष या मर्यादा पुरुषोत्तम तक सीमित मानने का आग्रह चल रहा था, गुप्तजी की वैष्णव भक्ति ने आकुल होकर पुकार की थी -

राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?
विश्व में रमे हुए नहीं समी कहीं हो क्या ?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा क्रे ;
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे ।

वास्तव में 'साकेत' राम कथा होने पर भी यहाँ का मुख्य केन्द्र उर्मिला ही है ; यही यहाँ का मुख्य स्वर है । गुप्तजी पर उर्मिला के व्यक्तित्व का अत्यन्त गहरा प्रभाव रहा । यहाँ तक कि 'यशोधरा' काव्य रचना की प्रेरणा भी यही उर्मिला रही । स्वयं गुप्तजी कहते हैं - 'भगवान् बुद्ध और उनके अमृततत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो बार आँसू ही तुम्हें इस में मिल जायँ तो बहुत समझना, और उनका श्रेय भी 'साकेत' की उर्मिला देवी को ही है जिन्होंने कृपापूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया है ।'

(यशोधरा - पृ.7)

5.8. बोध प्रश्न

1. साकेत के उद्देश्य और महत्व पर प्रकाश डालिए ।
2. 'साकेत के प्रेरणा' पर एक लेख लिखिए ।
3. साकेत की नारी का विविध रूप पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।

NOTES

NOTES

इकाई छँ : साकेत की कथा वस्तु : एक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

6.0. उद्देश्य

6.1. प्रस्तावना

6.2. साकेत की कथावस्तु और विवेचन

6.3. प्रथम सर्ग

6.4. द्वितीय सर्ग

6.5. तृतीय सर्ग

6.6. चतुर्थ सर्ग

6.7. . पंचम सर्ग

6.8. षष्ठ सर्ग

6.9. सप्तम सर्ग

6.10. अष्ठम सर्ग

6.11. नवम सर्ग

6.12. बोध प्रश्न

6.0. उद्देश्य

इकाई पाँच में आपने साकेत के उद्देश्य और महत्व, साकेत में नारीत्व और साकेत के प्रेरणा स्रोत आदि के बारे में अध्ययन किया । अब इस में आप कथा की विवेचना करेंगे ।

6.1. प्रस्तावना

अब आप साकेत की कथा की विवेचना, प्रथम सर्ग से लेकर नवम सर्ग तक करेंगे । इससे संपूर्ण रूप से आपकी ज्ञान-पृद्धि भी होगी आर 'रामकथा' की नवीन शैली से भी आप परिचित होंगे । 'नवम सर्ग' में आप विशेषकर उर्मिला का चरित्र-चित्रण तथा विरह का अध्ययन करेंगे ।

6.2. साकेत की कथावस्तु और विवेचन

'साकेत' गुप्त जी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ हैं । इसी काव्य के आधार पर उन्हें हिन्दी-जगत् में महाकवि के नाम से विभूषित किया गया है ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा लेकर गुप्तजी 'साकेत' रचना में प्रवृत्त हुए तब उनके समक्ष अनेक विचार थे । वह हिन्दी की उपेक्षिताओं - कैकेयी, उर्मिला, माण्डवी आदि का चित्रण करना चाहते थे, जिनमें विशेषता उर्मिला के प्रति अधिक सहानुभूति थी । दूसरी ओर उनके सनातन संस्कार राम का गुणगान करना चाहते थे । इसके अलावा उन्होंने राम को ईश्वर के अवतार मानते हुए भी आधुनिक मानव के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है ।

साकेत' की कथा तो पौराणिक राम की ही कथा है लेकिन गुप्त जी ने उसका नवीन और अत्याधुनिक ढंग से प्रस्तुतीकरण किया है । राष्ट्रकवि गुप्तजी वैष्णव भक्त होने के नाते 'साकेत' में भारतीय संस्कृति एवं उपेक्षिता उर्मिला का समग्र चित्रण दिखाने का प्रयास किया है । 'राम' में मनुष्यत्व का विकास दिखाते हुए भी उन्हें नमन करना नहीं भूले है ।

'साकेत' में दो कथाएँ मिलती हैं, राम और सीता की कथा तथा लक्ष्मण और उर्मिला की कथा । इन दो कथा धाराओं के बीच पड़ जाने से 'साकेत' की वस्तु शिल्प भी सन्तुलित नहीं रह गया है । उर्मिला की कूक अत्यन्न व्यापक तथा गहरी होकर प्रत्येक पात्र के मन में घर कर गयी है । कवि की लेखनी उर्मिला को कहीं भी नहीं छोड़ पायी है ।

नवम सर्ग में तो कथावस्तु पूर्णरूपेण छूट गयी हैं और एकादश-द्वादश सर्ग में कथा-प्रवाह अति त्वरित हो गया है । इन दो सर्गों में चौदह वर्ष की कथाएँ पूरी हो जाती है जब कि बाकी सर्गों में कुछ घटनाएँ ही वर्णित हैं ।

कवि का उद्देश्य उर्मिला के आँसुओं में मन भर के अवगाहन करना और रामभक्ति छाप से भी अछूता नहीं रह पाता है । ये दोनों कथाएँ इस प्रकार सुगुंफित (सुगठित) हैं कि अलग नहीं की जा सकतीं ।

डॉ.रामरतन भटनागर के अनुसार - "आधुनिक युग में राम-सीता का वह रूप नहीं रहा, जो प्राचीन काव्य में था । प्राचीन काव्य में राम-सीता या तो नायक-नायिका हो सकते थे या अवतारी अलौकिक शक्तियाँ । आधुनिक युग में अवतारवाद के ऊपर जन-साधारण की अवस्था बराबर कम हो रही थी, फलतः मध्य युग की भाँति ब्रह्म पर राम या विष्णु के अवतार राम को काव्य का विषय नहीं बनाया जा सकता था । फल यह हुआ कि कवियों को नए युग के अनुसार राम की मूर्ति गढ़नी पढ़ी । इनमें गुप्तजी अधिक महत्वपूर्ण है ।"

श्री रामस्वरूप दुबे के अनुसार - "साकेत के पात्र अलौकिक न होकर मानव पहले हैं और हमारे अधिक निकट हैं । उनके जीवन विवरण के साथ आधुनिक पाठक सहज तादात्म्य कर लेता है । 'साकेत' की सीता देवी नहीं, वरन् स्वावलंबिनी गृहिणी हैं । समयानुसार वह तकली, चरखा, कुदाल और खूरपी भी चलाती हैं ।

उर्मिला प्रथम बार नायिका के रूप में सामने आती है, और रामकथा की सभी घटनाएँ उर्मिला से संबंधित होकर उसी की भावधारा के अनुसार आती हैं ।''

इसलिए 'साकेत' में इतिवृत्तात्मकता होते हुए भी इतिवृत्त नहीं है । कथासूत्र विभिन्न स्थलों पर टूटते रहते हैं और उर्मिला के स्मृति-तन्तुओं से फिर जुड़ते हैं ।

डॉ.नगेन्द्र के अनुसार ''साकेत घटना-प्रधान नहीं है, प्रत्युत इसमें चरित्र की प्रधानता है और उर्मिला का त्याग-अनुरागमय जीवन ही इसका प्राण है ।''

डॉ.नगेन्द्र अन्यत्र ऐसे लिखते है - ''कवि ने सभी घटनाओं को नायिका के व्यक्तित्व द्वारा बड़े ही भावपूर्ण ढंग से अन्वित किया है । उसमें प्रयत्न-कृत्रिमता नहीं है । सभी घटनाएँ उर्मिला के चरित्र पर घात-प्रतिघात करती हैं । उसके वियोग की करुणा को स्पष्ट करती है । साकेत के पात्रों में प्रायः कोई पात्र ऐसा नहीं है, जो उर्मिला के चरित्र पर किसी न किसी रूप में प्रकाश न डालता हो ।

गुप्तजी भक्त कवि होने के नाते अपनी किसी भी काव्य कृति में अपने आराध्य को नमन करना नहीं भूल सकते हैं । सभी देवी-देवताओं के प्रति उनके हृदय में समान श्रद्धा और आदर की भावना है । इसलिए साकेत का मंगला चरण उनकी इसी उदार वृत्ति का है ।

6.3. प्रथम सर्ग

मंगला चरण के बाद कवि साकेत के प्रथम सर्ग का प्रारंभ देवी सरस्वती वन्दना से शुरु करता है । इसके तदुपरांत संकेत रूप में राम जन्म लेने की बात कहता है, साथ ही पाठकों को यह भी ध्वनित होता है कि निर्गुण-सगुण और अखिलेश ने ही राम के रूप में अवतार लेकर स्वर्ग से भी अधिक भाग्य इस भूतल को बना दिया । कवि, भगवान का अवतार इस भूतल पर क्यों हुआ इसका कारण भी

जानता है । भक्तवत्सल भगवान ने संसार को मार्ग दिखाने के लिए और भू-भार दूर करने के वास्ते, जन्म लिया । शिष्ट रक्षक तथा दुष्ट शिक्षक के हेतु अखिलेश्वर ने भूमि पर राम-राज्य स्थापित करने के लिए ही मानवी कौशल्या के यहाँ पयपान किया ।

इसके पश्चात कवि साकेत नगरी की भव्यता शोभा-समृद्धि का वर्णन करता है - साकेत की कथा वस्तुत यहाँ से आरंभ होती है -

देख लो, साकेत नगरी है यही
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही ।
केतु-पट अंचल-सदृश हैं उड़ रहे
कलक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे !

....
....
....

कवि, राजाधिराज दशरथ के शासन के बारे में संतोष प्रकट करते हुए कहते हैं कि ..... ''अवनि की इस अमरावती (साकेत-अयोध्यानगरी) में इन्द्र के समान दशरथ का शासन है । यहाँ के पौरजन स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट एवं उद्योगी हैं, एक तरु के विभिन्न सुमनों के समान हिल-मिलकर रहते है, बाह्य योगी होते हुए भी आंतरिक भी योगी है, आधि-व्याधि से मुक्त होकर पूर्ण समृद्धि का लोकोत्तर आनंद प्राप्त करते हैं । राजा और प्रजा का दुर्लभ पारस्परिक प्रेम यहाँ सहज ही प्राप्त है । चार फल रूपी पुत्र ... राम, भरत, लक्ष्मण, शुत्रुघ्न को पाकर राजा दशरथ अब और कुछ पाने की इच्छा व्यक्त नहीं करते हैं । लेकिन दशरथ की एकमात्र अभिलाषा है कि शीघ्र ही श्रीराम का अभिषेक हो जाये । इसके लिए तैयारियाँ की जा रही है ।

इतने में देखते-देखते सूर्योदय होता है । पूर्व दिशा में सूर्य किरणें उदित होकर क्षितिज को आवृत कर लेती है, तभी राज प्रसाद में एक नवल उषा-सी रमणी दिखा देती है -

अरुण पट पहने हुए आल्हाद में,
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में
प्रकट-मूर्तिमती उषा ही तो नहीं ?

वह उर्मिला है - उसको देखते ही कवि अपनी कलम को विश्राम नहीं देना चाहता है । उर्मिला का सौंदर्य-वर्णन करते हुए कवि अनेक चित्रों को प्रस्तुत करते हैं । उसके बाद कहते हैं -

नाम है इसका उर्मिला
शील-सौरभ की तरंगें आ रहीं,
दिव्य भाव भवाब्धि में हैं ला रहीं ।

इतने में लक्ष्मण भी वहाँ आ जाता है और पति-पत्नी परस्पर हास-परिहास करने लगते है । लक्ष्मण के द्वारा उर्मिला को यह सूचना भी मिलती है कि **''कल अपार आनंद का पर्व जुड़नेवाला है, राम का राज्याभिषेक होगा ।''** यह सुनकर उर्मिला अत्यन्त हर्षोल्लित हो जाती है । उसका आनंद सीमा रहित है । तुरन्त उर्मिला अपनी सधी तूलिका से राज्याभिषेक का चित्र तैयार करती है । तदुपरांत वह लक्ष्मण का चित्र भी बनाने में मग्न हो जाती है परंतु सात्विक भावों के स्फुरित हो जाने से तूलिका लक्ष्य-विरत्त हो जाती है और दम्पति परस्पर आलिंगन में डूब जाते हैं । दोनों के बीच काफी समय तक प्रेमालाप होता है, फिर लक्ष्मण कर्तव्य-पालन हेतु पत्नी से विदा लेते हैं । यहाँ प्रथम सर्ग पूरा होता है ।

6.4. द्वितीय सर्ग

इस सर्ग में दशरथ की तीनों रानियाँ और संपूर्ण साकेत राम-राज्याभिषेक की चर्चा सुनकर आनंद-विभोर हो रहे थे । लेकिन दशरथ की छोटी रानी कैकेयी की चेरी मंथरा उस सुनहरे अवकाश को कुचलने में प्रस्तुत हो जाती है । सारे पुरजन-परिजन हर्षोल्लास से विभोर हो रहे थे, किंतु मंथरा अत्यंत उदास थी । जब रानी कैकेयी ने मंथरा से उदासी का कारण पूछा तो ईष्यालु मंथरा ने संदेह जाग्रत करनेवाले षडयन्त्र का संकेत किया । कैकेयी भरत से भी ज्यादा प्यार राम से करती थी । जब संदेहास्पद बातों को मंथरा

द्वारा सुनती है तब क्रोध के मारे कांपने लगती है और दासी पर क्रोधित होकर उसकी कुटिल भावना के लिए बहुत डाँटती है ।

लेकिन मंथरा ने मनोवैज्ञानिक भाव-भूमि पर सधे और मर्मघाती शब्दों में ऐसा कहा -

देखकर स्वामि हित किन्तु घात,
निकल ही जाती है कुछ बात
इधर भोली हैं जैसे आप,
समझती वैसे सबको आप
x x x x
महारानी कैशल्या आज -
सहज सज लेती क्या सब साज ?
x x x x
भरत को करके घर से त्याज्य,
राम को देते हैं नृप राज्य ।
भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह ?
x x x x
क्षमा हो मेरा वह अपराध,
स्वामि सम्मुख सेवक या भृत्य,
आप ही अपराधी हैं नित्य ।
x x x x
समझ में आया जो कुछ मर्म
उसे कहना था मेरा धर्म ।
न था यह मेरा अपना कृत्य
भर्तृ है भर्तृ, भृत्य है भृत्य ।
x x x x

कैकेयी की दासी मंथरा तो अपनी बात कहकर चली गयी, पर रानी के मन में उथल-पुथल मच गयी । निर्मल मन में संदेहों के डेरा उत्पन्न होने लगा । बार-बार कैकेयी का मन कचोटने लगा कि आखिर क्यों भरत को ननिहाल से नहीं बुलाया !! क्या राजा दशरथ

को भरत पर भी संदेह था -

'भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जो गेह ।'

भरत की अनुपस्थिति में राजा राम का राज्याभिषेक हो रहा हैं, यही विष-बिन्दु था, उस विष-बिन्दु ने कैकेयी के मन को मथ दिया । कैकेयी सौतिया डाह के आग में जलने लगती है । मृदु-वात्सल्य की प्रतिमूर्ति कैकेयी रणचंडी बनकर कोप-भवन में जाकर बैठ गयीं । उसे बहुत पहले राजा दशरथ ने दो वर दिए थे । अब उन दो वरों का उपयोग करना चाहती हैं ।

राजमहल में अभिषेक के लिए सभी साज-सजाये जा रहे थे, इधर कैकेयी सौतिया-डाह में दग्ध होकर जलने लगीं । बहुत ही खुशी से राजा दशरथ कैकेयी के महल पहुँचते हैं । महाराज दशरथ स्नैणता का शिकार हो जाते हैं । कैकेयी दो वरों को माँगती हैं -

नाथ मुझको दो यह वर एक -
भरत को करो राज्य अभिषेक ।
दूसरा, सुन लो, हो न उदास,
चतुर्दश वर्ष राम-वनवास ।

रानी के इन वचनों को सुनते ही दशरथ को वज्र-प्रहार जैसे लगा परंतु **'प्राण जायें पर वचन न जाये' रघुवंश** में जन्में महाराज दशरथ उसे ठुकरा नहीं सके । क्योंकि रघुवंश के लोग जीवन के मूल्य पर भी वचन को पालनेवाले थे । राजा के प्राण एक विचित्र स्थिति में फँस गए -

'वचन पलटें कि भेजें राम को वन में
उभय विधि मृत्यु निश्चित जानकर मन में ।
हुए जीवन-मरण के मध्य घृत से वे,
रहे बस अर्द्ध जीवित, अर्द्ध मृत से वे ।'

मर्मान्तक पीड़ा से राजा दशरथ रात व्यतीत करते है, और मृत्यु की भयानक छाया लिए नया प्रभात होता है ।

6.5. तृतीय सर्ग

लक्ष्मण, प्राण-प्रिया उर्मिला से विदा लेकर राम के पास पहुँचकर अनुज को नतमस्तक नमस्कार करता है । इसके बाद राम-लक्ष्मण दोनों भाई पिता की वन्दना के वास्ते माँ कैकेयी के अंतःपुर पहुँचते हैं । जैसे ही वे अन्दर गए वैसे ही **राजा दशरथ - हा राम, हा सुत, हा गुणाकर !! कहकर मूर्छित हो जाते है ।** दशरथ की ऐसी दारुण स्थिति देखकर दोनों भाई स्तम्भित हो जाते हैं । राम कारण जानना चाहते है, लेकिन दशरथ की पलकें खुली रहीं और वे अपलक राम को निहारते रहे । पिता की मौन से विकल होकर, विमाता कैकेयी से ही कारण पूछा । कैकेयी ने उन्हें सब कुछ बताया -

'सुनो, हे राम ! कण्टक आप हूँ मैं,
कहूँ क्या और, बस चुपचाप हूँ मैं ।'

राम, परिस्थिति को अच्छी तरह से समझ गए, और पिता की मनोव्यथा स्पष्ट हो गयी । राम ने तत्क्षण कहा - **'इतनी-सी बात के लिए इतनी चिन्ता । भरत में और मुझेमें भेद ही क्या है । भरत यहाँ धर्म-पालन करें और मैं वन में धर्म-पालन करूँगा ।'** यह बात सुनते ही राजा दशरथ फिर मूर्छित हो गये ।

परंतु लक्ष्मण के तन-बदन में आग लग गयी । इतने में दशरथ उठने के लिए प्रयत्न करते हैं । राम-लक्ष्मण ने उन्हें संभाला । पिता उन्हें हृदय से लगा लिया और साहस करके इतना कह सके - **'राम ने मुझको ठगाया ।'**

इतने में लक्ष्मण इसका मूल कारण कैकेयी को फटकारने लगे । कैकेयी को नाश करने की धमकी देते हैं -

'बुला ले सब सहायक शीघ्र अपने,
कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने ।
सभी सौमित्र का बल आज देखें,
कुचकी चक्र का फल आज देखें ।'

राम ने लक्ष्मण को बहुत संभाला ! फिर भी लक्ष्मण और भी उबल पड़े -

'खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह
अनार्या की जनी, हत भागिनी यह,
अभी विष दंत इसके तोड़ दूँगा,
न रोको तुम, तभी मैं शांत हूँगा !
बने इस दस्युजा के दास हैं जो,
पिता है वे हमारे या कहूँ क्या ?
कहों हे आर्य ! फिर भी चुप रहूँ क्या ? '

बहुत प्रयत्न करने के बाद लक्ष्मण शांत होते हैं । पर वह भी राम के साथ वन जाने के लिए उद्युक्त होता है । राम उसे समझा-बुझाते है - फिर भी सब व्यर्थ हो जाता है । राम-लक्ष्मण माता कौसल्या के पास जाते हैं - इसके बीच में उनकी भेंट मंत्री सुमंत्र से होती है । पिता (राजा दशरथ) को धैर्य बाँधने का काम सुमन्त्र को सौंपकर राम-लक्ष्मण माता के यहाँ जाते हैं ।

6.6. चतुर्थ सर्ग

महारानी कौसल्या उसकी सादगी और शांतता के लिए प्रसिद्ध थी । वह अत्यन्त पवित्रता की मूर्ती थीं । वह देवार्चन के काम में जुड़ी हुई थीं । बहू सीता पास ही थी और पूजा की आवश्यक सामग्री जुटाने में उनकी सहायता कर रही थीं । तभी राम-लक्ष्मण वहाँ आकर माता को प्रणाम करके आशीर्वाद भी प्राप्त किया । राम ने अपने वन जाने और भरत के राज्याभिषेक की बात बताई । माँ कौसल्या सहसा विश्वास न कर सकीं, लेकिन जब लक्ष्मण को रोते हुए देखकर उनका हृदय आशंकित होकर मचलने लगता है । सब विषय को विस्तार रूप से जानने के बाद राम के वास्ते (ममतामयी माँ) सौत कैकेयी के पास जाकर पुत्र-भिक्षा माँगने को तैयार भी होती हैं । **'उनके पैरे पड़ूँगी मैं कहकर यही अड़ूँगी मैं - भरतराज्य की जड़ नहिले मुझे राम की भीख मिले ।'** उसी समय सुमित्रा, उर्मिला के साथ वहाँ आ जाती हैं । जब सुमित्रा ने भीख माँगने की बात

सुनती है उसे वह अनुचित लगती है । वह बादल के समान गरज उठती है -

'हम पर-भाग नहीं लेंगी,
अपना त्याग नहीं देंगी ।
वीरों की जननी हम हैं,
हमें भिक्षा-मृत्यु सम है ।
राघव शान्त रहोगे तुम
क्या अन्याय सहोगे तुम ?
मैं न सहूँ कि लक्ष्मण तू ?
नीरव क्यों इस क्षण ।'

राम, माता सुमित्रा को शांत करते हैं उसी समय सीता - मन ही मन वन जाने का निश्चय कर लेती है - वैसे ही सीता मन ही मन में वन में स्वर्ग रचाने की कल्पना और विचार करने लगती है । लक्ष्मण, उर्मिला को अयोध्या में ही रहकर ससुर-सासों की सेवा में निमग्न होने के लिए आदेश देता है । बेचारी उर्मिला प्रिय - पथ में बाधक न बनने के लिए निश्चय कर लेती है - अपने उर पर अवधि-शिला का भार रख लेती हैं ।

'अवध शिला का उर पर था गुरु भार,
तिलतिल काट रही थी दृग जलधार ।'

सुमित्रा, कौसल्या को धैर्य बाँधती है और राम को वन जाने की अनुमति स्वयं भी देती है । राम से लक्ष्मण को भी साथ ले जाने के लिए कहती है और आगे लक्ष्मण से कहती है -

'लक्ष्मण ! तू बड़ा भागी है ;
जो अग्रज-अनुरागी है ।
मन ये हों, तन तू वन में,
घन ये हों, जन तू वन में ।
लक्ष्मण का तन पुलक उठा,
मन मानो कुछ कुलक उठा ।'

राम, सीता को भी वन न आने के लिए समझाते है लेकिन सीता पहली बार कौसल्या के सम्मुख पति से कहती है -

'नाथ न कुछ-होगा इससे,
क्या कहते हो तुम किससे ?
समझो मुझको भिन्न न हा !
तुम को दुःख तो मुझको भी ।
तुम को सुख तो मुझको भी,
सुख में आ आकर घेरुँ,
संकट में अब मुँह फेरुँ,
x x x x
जो गौरव लेकर स्वामी !
होते हो कानन गामी,
उसमें अर्द्ध भाग मेरा,
करो न आज त्याग मेरा ।
मातृ-सिद्धि, पितृ-सत्य सभी,
मुझे अर्द्धाङ्ग बधूरे ही -
सिद्ध करो तो पूरे ही ।
सबके हित मैं वन में भी,
निर्जन, सघन गहन में भी
सब व्रत-नियम निभाहूँगी
सबका मंगल चाहूँगी - '

इसके बाद सुमंत्र का आगमन होता है । वे राम-सीता, लक्ष्मण को रोकने के लिए प्रयत्न करते हैं । पर सब व्यर्थ होता है । राम का निश्चय अटल है । वल्कल वस्त्र पहनकर राम जैसे ही सीता को वल्कल देते हैं कौसल्या बिलक उठती है -

'बहू ! बहू !' माँ चिल्लाई
आँखें दूनी भर आई -
'हाथ-हटा, ये वल्कल है,
मृदुतम तेरे करतल है ।
यदि ये छू भी जावेंगे -
तो छाले पड़ आवेंगे !
कोमल-वधू ! विदेह-लली !

मुझे छोड़कर, कहाँ चली ?
वन की काँटों भरी गली,
तू है मानस-कुसुम-कली ।'

लेकिन सीता ने अपना निश्चय नहीं बदला । उर्मिला तो प्रिय-वियोग की कल्पना करके वही मूर्छित होकर गिर पड़ी । तुरंत सीता बहन की स्थिति देखकर कहती है -

'आज भाग्य जो है मेरा,
वह भी हुआ न हा ! तेरा !

उर्मिला को गिरते देख लक्ष्मण ने कस कर अपने नेत्र मूँद लिए । राम ने अपने प्यारे भाई को वन न आने के लिए समझाया । पर लक्ष्मण अपने निश्चय पर अटल रहे । इतने में मंत्री सुमंत्र का आगमन होता है । राम को रोकने के लिए प्रयत्न करता है । पर राम वन जानें का अटल विश्वास नहीं छोड़ता है । दशरथ के आदेशानुसार मंत्री सुमंत्र रथ लेकर, राम-सीता, लक्ष्मण को वन छोड़ आने के लिए तैयार रहता है । कौसल्या ने विवश भाव से राम, लक्ष्मण और सीता तीनों को वन गमन की आज्ञा दे दी और अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान करते हुए तीनों को विदा किया ।

6.7. पंचम सर्ग

श्रीराम ने गुरुवर वशिष्ठ जी को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद माँगा । मुनिवर वशिष्ठ जी ने राम को प्रेम पूरक हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद दिया उन्होंने ऐसा कहा -

वत्स चाहता हूँ अभी -
किन्तु नहीं कल्याण इसी में है सभी ।
देवकार्य हो और उदित आदर्श हो,
उचित नहीं फिर मुझे कि क्षोभ-स्पर्श हो ।
मुनि-रक्षक-सम करो विपिन में वास तुम,
मेरे तप के विघ्न और सब त्रास तुम ।
हरो भूमि का भार भाग्य से लभ्य तुम ।
करों आर्य सम वन्यचरों को सभ्य तुम ।'

राम, वशिष्ठ जी से आशीर्वाद लेकर लक्ष्मण, सीता सहित रथ पर चढ़ गए । राह में दोनों ओर नगर के पुरवासी नर-नारी अश्रुपूरित नेत्र लिए खड़े थे । सभी कैकेयी की निंदा कर रहे थे । सभी रानी कैकेयी की कुटिलता और धूर्तता पर अत्यन्त क्षोभ प्रकट कर रहे थे । नगर की सारी प्रजा, राम के साथ वन में निवास बनाने का निश्चय व्यक्त कर रही थी । राम सब लोगों को स्नेह पूर्वक बातों से समझा रहे थे । फिर भी प्रजा वन जाने को अटल थीं । प्रजा राम से ऐसे कहते हैं -

भद्र, न ऐसा तुम कहा -
देते हैं हम तुम्हें बिदा ही कब अहो !
राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना,
करों न तुम यों हाय ! लोकमत अनसुना !
जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ !
यों कह पथ में लेट गए बहु जन वहाँ !

तब राम ने अपने पूर्वजों की गौरव-गाथा सुनाकर सभी को शांत किया और कहा -

उठो विघ्न मत बनों धर्म के मार्ग में,
चलो स्वयं कल्याण-कर्म के मार्ग में ।
दो मुझको उत्साह, बढ़ूँ विचारुँ, तरुँ,
पद पद पर मैं चरण-चिह्न अंकित करुँ ।

इस प्रकार राम ने प्रजा को कुछ शांत कर लिया ।

साकेत की सीमा पर पहुँचते ही राम में जन्म भूमि के प्रति भक्ति एवं प्रेम उमड़ आया । राम ने रथ से उतर कर साकेत की सीमा को प्रणाम किया और कहा -

'जन्म भूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे ।
तेरे कीर्ति-स्तम्भ..., सौध मंदिर यथा -
रहें हमारे शीर्ष समुन्नत सर्वथा ।'

इसके बाद राम रथ में आकर बैठ गए । रथ आगे बढ़ा और शाम के समय वे तमसा के किनारे जा पहुँचे । पहली रात तमसा के किनारे

ही व्यतीत की और दूसरे दिन गोमती पार कर गंगा तट पर पहुँचे । वहाँ निषाद-राज ने तीनों को आदर स्वागत किया । राम स्नेह से उससे मिला । उस रात वहीं बीती और सूर्योदय होते ही सब लोग गंगा पार करके प्रयाग पहुँचकर मुनिवर भारद्वाज से भी मिले । तत्पश्चात् महर्षि वाल्मीकि के दर्शनार्थ चित्रकूट के गहन वन में पहुँचे । वहाँ के सब मुनियों ने तीनों लोगों का आदर सत्कार किया । राम चित्रकूट में बसने के लिए निश्चय करता है तब लक्ष्मण ने वहाँ के वासियों की सहायता से कुटी बनायी । वनचारियों का स्वागत राम ने सहर्ष स्वीकार किया ।

6.8. षष्ठ सर्ग

इस सर्ग में कथा पुनः साकेत की ओर लौटती हैं । मूर्छिता उर्मिला को उसकी सखी सुलक्षणा धैर्य बाँधाती है । किन्तु उर्मिला के मन को कौन समझ सकते है ? उर्मिला बार-बार मूर्छित होती जाती है और माताओं की दशा तो और भी दारुण थी, पुत्रों के कष्टों का स्मरण कर रोना चाहती थी पर रो भी नहीं सकती थी क्यों कि पति दशरथ की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । महारानी कौसल्या ने पति को बहुत ही समझाया । राम लक्ष्मण और सीता के वन चलने के बाद राजा कैकेयी के महल से कौसल्या के यहाँ आ गये थे । कौसल्या पति को समझाते हुए ऐसा कहती है कि - **'राम-सीता और लक्ष्मण ने अपने धर्म का पालन किया है । अतः आपको इस शोक को गौरव-बल से सहकर इन दुःखिताओं की ओर देखना चाहिए ।'** पत्नी की इन शब्दों को सुनते ही राजा आँख खोलते हैं - **'यह कौन है कि जो बोल रहा ? कौसल्ये !! धन्य राम-माता, क्या कहूँ, हाय रे ! विधि-धाताः ! यह शोक कहाँ तक रोकूँ मैं ? किस मुँह से तुम्हें विलोकु मैं ? हा ! आज दृष्टि भी कहाँ गई ?** -

'वह वधू जानकी जहाँ गई,
उर्मिला कहाँ है, हाय बहू ।
तू रघुकुल की असहाय बहू ।

मैं ही अनर्थ का हेतु हुआ,
रविकुल में सचमुच 'केतु' हुआ ।'

किन्तु उर्मिला और सीता का ध्यान करते ही पुनः व्यग्र हो उठते हैं .... अपने आप कोसने और निन्दा करने लगते है । कैकेयी की कुटिलता पर क्षोभ प्रकट करते हुए पटरानी कौसल्या से भी कुछ माँगने के लिए कहते हैं । किन्तु विशाल स्वभाव और वात्सल्य की प्रति मूर्ति कौसल्या केवल इतना ही कहती है -

'माँगूँगी क्यों न नाथ, तुमसे,
दो यही मुझे कल्पद्रुम-से ।
कैकेयी हों चाहे जैसी,
सुत-वंचिता न हो मुझ जैसी ।

दशरथ कौसल्या की हृदय-विशालता की यह बात सुनते ही और भी दुःख-तप्त हो जाते हैं ..... राम नाम को रटने लगते है । एक एक क्षण भी युग के समान काटते है । राजा को सुमंत्र की प्रतीक्षा है - उन्हें अभी तक विश्वास नहीं हो रहा है कि सचमुच राम 14 वर्ष के लिए वन चलें गए हैं । राजा को राम के बिना एक पल भी युग के समान हो रहा है । उन्हें अभी एक आशा है कि सुमंत्र के द्वारा **'मेरी शोचनीय दशा' की सूचना मिलते ही मेरा पितृ भक्त राम वापस आयेगा ।'** इस आशा में सुमंत्र की प्रतीक्षा कर रहे है लेकिन सुमंत्र तो अकेले ही लौटते है । दशरथ से सुमंत्र ने राम-लक्ष्मण और सीता का संदेश समाचार कहा -

'राघव ने हाथ जोड़ करके,
तुमने यह कहा धैर्य करके
आता है जी में तात यही -
पीछे पिछले व्यवधान नहीं ।
कब लौटूँ चरणों में आकर,
सुख पाऊँ कर स्पर्श पाकर ।
पर धर्म रोकता है वन में,
करना न सोच मेरा मन में

देगा मुझको विश्रान्ति वही
दे तात तुम्हें भी शांति वही ।'

संदेश सुनते ही दशरथ की समस्त व्यग्रता बाँध तोड़कर निकल पड़ती है । वह **'हा ! राम, हा सीते - हा लक्ष्मण'** कहते हुए अपने प्राण त्याग देते हैं - जीवन दीप बुझ गया महाराज के प्राण स्वर्ग को उड़ चलें । चारों ओर यह सूचना आग की तरह फैल जाती हैं । दोनों रानियाँ अर्द्ध-मृत-सी हो गई, सुमंत्र ऊँचे स्वर में विलाप करने लगे, अनुचर अनाथ और असहाय हो जाते हैं । सभी विलाप करने लगें । उर्मिला ने **'माँ, कहाँ गये वे पूज्य पिता'** कहती हुई असहाय सी कैकेयी के सामने जा गिरी, लेकिन कैकेयी की आँखें फट-सी गयीं न मुँह खुला, न शरीर हिला ।

मुनिवर वशिष्ठ जी ने सब को धैर्य दिया और दशरथ के शरीर को तेल में भरवा कर रखवा दिया गया और चतुर दूत भरत-शत्रुघ्न को बुलाने के लिए भेज दिये । सभी शोक के अपार सागर में डूब हुए थे केवल कैकेयी का एक आशादीप टिमटिमा रहा था वह था भरत ! भरत !

6.9. सप्तम सर्ग

भरत-शत्रुघ्न के साथ ननिहाल से आ रहें हैं किन्तु उनके मन में उल्लास नहीं है । उन्हें सर्वत्र एक अवसाद की छाया दिखायी देती है । वह दूतों से पूछते हैं, पर ठीक तरह से उत्तर नहीं मिलते । संध्या का समय होकर भी रात की सी निस्तब्धता छाई हुई है । दोनों भाई अमंगल की आशंका से काँप रहे हैं ।

साकेत के पुर द्वार पर प्रहरी मौन विनायचार करते हैं । सारा दृश्य दोनों भाईयों को एक प्रकार से विकल बनाता है । मंत्री सुमंत्र आकर दोनों भाईयों से मिलते हैं । सुमंत्र को देखते ही भरत विह्वल होकर रोने लगते हैं सचिव अपने आँसुओं को रोकर, उन्हें राज्य भोगने की बात कहते हैं । लेकिन भरत उन बातों के प्रति ध्यान न देखकर एक आशंका भरी वाणी से सुमंत्र से पूछते हैं -

'तात कैसे है ? ' सचिव उत्तर देते हैं -

'पा चुके वें विश्व-बाधा मुक्ति
पर कहाँ इस समय नर नाथ ?

सचिव फिर बोलें -

'सब रहस्य जहाँ छिपे हैं रम्य
योगियों का भी वहाँ क्या गम्य ?
किन्तु उनके पुत्र हैं हम लोग,
मार्ग दिखलाओं मिले शुभ योग ।'

सुमंत्र उचित-उचित उत्तर देते है, और उन्हें शुद्धान्त द्वार पर पहुँचाते हैं । देहली के पार केवल एक पद रह गया था कि -

'हा पितः ' सहसा चिहुँक, चीत्कार ।
गिर पड़े सुकुमार भरत कुमार ।

कैकेयी, दासी मंथरा के साथ आगे बढ़कर भरत पर हाथ फेरनें लगती हैं । शुत्रुघ्न स्तंभित होकर मूक रह जाते हैं ।

भरत के मुँह से बड़ी देर के बाद यह शब्द निकलते है -

'हा अम्ब !
आज हम सबके कहाँ अवलंब ?
देखने को तात शून्यनिकेत,
क्या बुलाये हम गये साकेत ? '

कांपते हुए हाथ पावों से बहुत धीरे-धीरे कैकेयी, भरत के प्रश्नों के लिए उत्तर देती है -

'वत्स, स्वामी तो गये उस ठौर,
लौटना होगा न जिससे और !
मैं स्वयं पतिआंतिनी हूँ हाय !
जीव जीवन मृत्य का व्यवसाय ।'

इसके बाद तदुपरांत भरत और शत्रुघ्न भाई राम और लक्ष्मण के बारे में पूछते हैं, तब कैकेयी कहती है -

'वन गये वे अनुज - सीता युक्त !
x x x x
तो सुनो यह क्यों हुआ परिणाम -

प्रभु गए सुर-धाम, वन को राम ।
माँग मैंने ही लिया कुल-केतु,
राजसिंहासन तुम्हारे हेतु ।'

कैकेयी के बातों को सुनते ही भरत को लगा कि जैसे वज्र सा टूट पड़ा हो, वह अवसन्न रह गये और उनके मुख से केवल इतना ही निकला -

'हा हतोऽस्मि ।'

शत्रुघ्न ने क्रोध के मारे कांपते हुए ओंठ काट लिए । आगे कैकेयी को बहुत ही कठोर वचन से भर्त्सना करने लगे । वह उन्मत होकर 'राजद्रोही' कहकर कैकेयी को निंदा करने लगे, तब कैकेयी ने भरत से ऐसा कहा - कैकेयी चिल्ला उठी सोन्माद -

'सब करें मेरा महा अपवाद,
किन्तु उठ ओ भरत मेरा प्यार,
चाहता है एक तेरा प्यार ।
राज्य कर, उठ वत्स मेरे लाल,
मैं नरक भोगूँ भले चिर काल ।
दण्ड दे, मैंने किया यदि पाप,
दे रही हूँ शक्ति वह मैं आप ।'

कैकेयी के इस बात को सुनकर भरत कहता है -

'धन्य तेरा क्षुधित पुत्र-स्नेह,
खा गया जो भूनकर पति-स्नेह ।
ग्रास करके अब मुझे हो तृप्त,
और नाच निज दुराश्य - तृप्त ।'

भरत और शत्रुघ्न बहुत विलाप करते हुए माँ कौसल्या के पास चले जाते हैं । भरत और शत्रुघ्न कौसल्या से मिलने का दृश्य बड़ा हृदयद्रावक है -

'तुम कहाँ हो अंब, दीन अंबा,
पति-विहीना, पुत्र-हीना अम्बा ।
भरत-अपराधी भरत-है प्राप्त,
दो उसे आदेश अपना आप्त ।

आज माँ, मुझ-सा अधम है कौन ?
मुँह न देखो, पर न हो तुम मौन ।
प्राप्त है यह राज्यहारी चोर,
दूर से षडयन्त्रकारी घोर,
आ गया मैं - गृह कलह का मूल ;
दण्ड दो, पर दो पदों की धूल ।'

भरत माँ कौसल्या के सम्मुख आत्मग्लानी से परिताप करने लगता है । तब माँ कौसल्या उसे हृदय से लगाकर कहती है -

'झूठ यह सब झूठ, तू निष्पाप ;
साक्षिणी तेरी यहाँ मैं आप ।
भरत में अभिसंधि का हो गंध,
तो मुझे निज राम की सौगंध ।
कैकेयी, सुनलो बहन यह नाद,
ओह ! कितना हर्ष और विषाद ! '

x x x x

फिर माता कौसल्या भरत से कहती है कि -

'वत्स रे आ जा, जुड़ा यह अंक ;
भानुकुल के निष्कलंक मयंक !
मिल गया मेरा मुझे तू राम,
तू वही है, भिन्न केवल नाम !
एक सहृदय, और एक सुगात्र,
एक सोने के बने दो पात्र ।'

कौसल्या भरत को राज्य भार संभालकर और अंत में पिता को तिलांजलि देने का आदेश करती है । भरत फिर मूर्छित हो जाता है । कौसल्या और सुमित्रा दोनों माताएँ घबराकर नाना भाँति उपचार करने लगती हैं । भरत को देखने के लिए गुरु वशिष्ठजी आते है । भरत और शत्रुघ्न गुरु के पैरों पर पड़ते हैं । गुरुजी सब को आश्वासन देते है । इसी प्रकार रात व्यतीत होती है । दूसरे दिन राजा दशरथ के दाह संस्कारार्थ सरयू-तट पर चिता सजायी जाती है । भरत अग्नि देते है, पर तभी फिर अपना धैर्य खो बैठते हैं -

'इस पिता ही की चिता के पास,
मुझ अगति को भी मिले चिर दास ।'

इसके बाद भरत गति-हीन होकर लौटते है, पिता की चिता को देखकर उसी में लीन हो गए थे । उसे देखकर गुरु वशिष्ठ जी यों कहते है -

'भरत ! बोले गुरु - भरत, हो शांत,
जनकवर के जानकर कुल कान्त !
कर चुके हो मृतजनक संस्कार,
हत जननियों का करो उपचार ।
भेज यों पितृवन उन्हें सस्नेह,
पुत्र, इनको ले चलो अब गेह ।'

गुरु वशिष्ठ जी ने फिर भरत को बहुत समझाया और उन्हें माताओं को लेकर घर चलने का आदेश दिया ।

6.10. अष्ठम सर्ग

अब कथा राम की तरफ चलती हैं । राम चित्रकूट में एक वृक्ष की छाया में पड़ी शिला पर बैठे हैं, पर्णकुटी में सीता गीत गुनगुनाती हुई काम कर रही हैं, और राम प्रणय-प्राणा सीता को एकटक देख रहे हैं । सीता को राम ने कुछ देर विश्राम करने के लिए कहा और उससे विनोद और प्रेमालाप भी करते हैं । सीता से अपने वन आने का उद्देश्य स्पष्ट करते हैं -

मैं आया, जिसमें बनी रहे मर्यादा,
बच जाय प्रलय से मिटै, न जीवन सदा ।
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया ।
मैं यहाँ एक अवलंब छोड़ने आया ।।
....
नर को ईश्वरता प्राप्त करने आया !
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।
....

जो राम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
वे भी भव सागर बिना प्रयास तरेंगे ।

इसी समय सीता देखती है कि भयाकुल खग-मृग भाग रहे हैं । शोर बढ़ता जाता है । लक्ष्मण आशंका प्रकट करते हैं । उन्हें भरत के आगमन की सूचना मिलती है । उन्हें यह शंका उत्पन्न होती है कि शायद भरत दल-बल के साथ आक्रमण करने के वास्ते आ रहें हैं । क्रोध से लक्ष्मण चीत्कार करने लगते हैं और अनुज राम से ऐसे कहते हैं -

'आये होंगे यदि भरत कुमति-वश वन में,
तो मैंने यह संकल्प किया है मन में -
उनको इस शर का लक्ष चुनूँगा क्षण में -
प्रतिरोध आपका भी न सुनूँगा रण में ।

राम, लक्ष्मण को शांत करते हुए पत्नी सीता और भाई से ऐसे कहते हैं -

'भद्रे न भरत भी उसे छोड़ आये हों,
मातृश्री से भी मुँह न मोड़ आये हों ।
लक्ष्मण, लगता है यही मुझे हे भाई,
पीछे न प्रजा हो पुरी शून्य कर आई ।'

राम का विचार है कि भरत अपनी माता का परित्याग कर सारी अयोध्या की जनता के साथ चले आ रहे हैं । सामने भरत-शत्रुघ्न को आते देख वे लक्ष्मण और सीता के साथ आगे बढ़ते हैं । भरत और शत्रुघ्न राम के पास पहुँचते ही उनके चरणों में लेट जाते हैं । राम उन्हें हृदय से लगा लेते है । इसके बाद गुरु वशिष्ठ आदि मुनिवर आते हैं । राम उन्हें प्रणाम करते हैं । उसके बाद राम की दृष्टि माताओं पर पड़ी -

'जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,
हत जिसकी पंकज-पँक्ति, अचल-सी काया ।
उस सरसी-सी, आभरणरहित, सितवसना,
सिहरे प्रभु माँ को देख, हुई जड़ रसना ।

'हा तात !' कहा चीत्कार समान उन्होंने,
सीता सह लक्ष्मण लगे उसी क्षण रोने ।'

राम-लक्ष्मण और सीता, तीनों रोनें लगे । तब गुरु वशिष्ठ जी ने उन्हें सांत्वना दी । फिर राम स्वर्गीय पिता को श्रद्धांजली अर्पित करना चाहते है । यह कार्य भी संपन्न होता है । चित्रकूट में आए सभी व्यक्तियों को राम अपने आमंत्रित अतिथि मानकर पहले उनको भोजन से तृप्त करके फिर स्वयं बन्धु-बान्धवों के साथ भोजन करते हैं ।

इन सब कार्यों को समाप्त करने के बाद कुटी के सम्मुख सब एकत्रित होते हैं । सभा जुड़ती हैं । तब राम समुद्र के समान गंभीर वाणी में बोले **'हे भरत भद्र अब तुम अपनी मनोकामना और अभिलाषा कहो,** भरत अत्यंत मार्मिक और दीन शब्दों में अपना अनुताप, दुःख व्यक्त करते हैं । भरत राम से घर लौट चलने का आग्रह करते हैं । वह अपनी ग्लानि में मरे जा रहे हैं । राम, भरत को प्रेम से आलिंगन करके कहते हैं कि **'हे भाई, तुम्हारे समान सद्‌गुणी मनुष्य दूसरा नहीं तुम्हारे अंतरंग को वह जननी जान न पाई जिसने तुमको जन्म दिया ।'**

तब कैकेयी राम के इस कथन का सूत्र पकड़कर कहती है कि -

'अगर यह सच है तो लौट चलो अब घर को ।'

कैकेयी की उपरोक्त वाणी को सुनकर सभा के सब लोग चौंक गए । सब लोगों ने सहसा अत्यन्त आश्चर्य से रानी की ओर देखा तब कैकेयी ऐसी लग रही थी मानों कोहरे से ढकी चाँदनी हो । कैकेयी के मन में उस समय भावों का संघर्ष छिड़ा हुआ
था । पहले जो कैकेयी सिंहणी जैसी थी, वही कैकेयी आज गोमुखी गंगा जैसी शांत और शीतल होकर बैठी थी । कैकेयी ने अत्यंत शांत और स्नेह भाव से कहा - **''हां राम, तुम ठीक ही कह रहे हो कि मैं भरत को जन्म देकर भी उसके हृदय को नहीं जान सकी ।''** फिर आगे कहती हैं -

'अपराधिनी मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया ।''

....

यदि मैं उकसाई गई भरत से हौऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो,
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ ? '

....

थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके ?
जो कोई जो कह सके, कहे क्यों चूके ?
छीने न मातृ पद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे ?

....

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी -
रघुकुल में भी थी एक अभागिनी रानी !

कैकेयी स्वयं अपने को कोसती है । मगर वह मातृपद खोना नहीं चाहती है । वैधव्य तो उसे मिल ही गया ; किन्तु पुत्रहीन नहीं होना चाहती ।

कैकेयी ने भरत के लिए सब कुछ किया था पर आज भरत भी उसका अपना नहीं रह गया है, वह भी उसे घृणा की दृष्टि से देखता है, उसके लिए इससे भी बड़ा और क्या दण्ड़ होगा ? !!

कैकेयी राम के प्रति अपना अनुराग प्रकट करती है ; भरत और राम उसकी दो आंखे हैं । कैकेयी कभी किसीके समक्ष नत-मस्तक नहीं हुई ; पर वही मानिनी कैकेयी आज दीनहोकर, पुत्र वात्सल्य के लिए राम से भिक्षा माँग रही है । कैकेयी का स्वाभिमान गलित हो गया -

'सहती कोई अपमान तुम्हारी अंबा !
पर हाय आज वह हुई निंपट नालंबा !'

x x x x x

यों ही तुम वन को गए, देव सुरपुर को,
मैं बैठ ही रह गई लिए इस उर को !
बुझ गई पिता की चिता भरत-भुजधारी,
पितृ-भूमि आज भी तप्त तथापि तुम्हारी ।'
स्वामी को जीते जी न दे सकी सुख मैं,
मरकर तो उनको दिखा सकूँ यह मुख मैं ।

x x x x x

जीवन-नाटक का अंत कठिन है मेरा ! '

यहाँ कवि गुप्तजी ने कैकेयी के दोष का प्रक्षालन कर दिया है । उसके पश्चाताप द्वारा सभा में उपस्थित जन कैकेयी के इस हाल को देखकर एक तरफ मूक रोदन करते हैं तो दूसरी तरफ कैकेयी के इस अप्रत्याशित व्यवहार पर दाँतों तले उँगली दबाते हैं साथ ही कैकेयी की जय-जयकर करते हैं -

कैकेयी की प्रार्थना से राम प्रभावित अवश्य होते हैं पर अपना निर्णय नहीं बदलते । भरत, राम के सम्मुख यह प्रस्ताव रखते हैं कि भरत वनवास भोग लें और राम प्रजासहित शासन करें, पर पितृवाक्य परिपालन में अटल विश्वासी और धर्मपारायण, धर्मव्रती राम किसी भी प्रकार विचलित नहीं होते ।

इस पर भरत सीता को शासन के लिए साकेत ले जाने का प्रस्ताव रखते हैं -

'जब तक पितृज्ञा आर्य यहाँ पर पालें,
तब तक आर्या ही चलें, स्वराज्य संभाले ।'
'भाई, अच्छा प्रस्ताव और क्या इससे ?
हम-तुमको संतोष सभी को जिससे ।'
मैंथिली बोली - 'पर मुझको भी हो न तब ना ? '

x x x x x

'मेरा मंडन सिन्दूर-बिन्दू यह देखो,
सौ-सौ रत्नों से इसे अधिक तुम लेखो ।'

पर सीता भरत के प्रस्ताव के लिए अपने सिन्दूर-बिन्दू की महिमा, राज्य से कहीं अधिक सिद्ध करके, उन्हें अपने धर्म पालन का माता के समान आशीर्वाद देती है ।

अंत में भरत, राम की पादुकाओं पर ही तर्क उतरता है -

'बस मिले पादुका मुझे उन्हें ले जाऊँ,
बच उसके बल पर अवधि पार मैं जाऊँ ।

राम चरण-पादुका दे देते हैं । आगे का दृश्य इस अष्ठम सर्ग में विशेष कुतूहल उत्पन्न करता हैं -

सब मिल लिये, पर लक्ष्मण की प्रिया उर्मिला की किसी ने सुध नहीं ली, वह मानिनी सबके सामने प्रिय से कैसे मिले !! सीता ही उपाय करती है और किसी बहाने से उन्हें (लक्ष्मण को) अंदर भेजती है -

गुरु-जन समीप थे एक समय जब राघव,
लक्ष्मण से बोली जनक सुता साऽलघव -
'हे तात, तालसंपुटक तनिक ले लेना,
बहनों को वन-उपहार मुझे है देना ।'
'जो आज्ञा' - लक्ष्मण गये तुरंत कुटी में,
ज्यों घुसे सूर्य-कर-निकर सरोज-पुटी में ।
जाकर परंतु जो वहाँ उन्होंने देखा,
तो दीख पड़ी कोणस्थ उर्मिला-रेखा !!
या काया है या शेष उसी की छाया,
क्षण भर में उनकी कुछ नहीं समझ में आया !'

लक्ष्मण को एक ही साथ में दुःख-आनंद-भय होता है । दुःख इसलिए कि उर्मिला की स्थिति देखकर - आनंद इसलिए होता है कि एक क्षण के लिए, सही उर्मिला का दर्शन हुआ .... लेकिन उसे भय इसलिए होता है ..... कि यदि उर्मिला के दर्शन से उसका मन कहीं विचलित न हो जाय !

उर्मिला उनका भय दूर करती है -

'मेरे उपवन के हरिण आज वन चारी,
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी ।'

उर्मिला की बातों को सुनकर लक्ष्मण लज्जा से -

गिर पड़े दौड़ सौमित्रि प्रिया-पद-जल में,
वह भीग उठी प्रिय चरण धरे हज जल में ।'

लक्ष्मण फिर सावधान और सचेत होकर कहते हैं -

'वन में तनिक तपस्या करके,
बनने दो मुझको निज योग्य,
भाभी की भगिनी तुम मेरे,
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य ।'

उर्मिला के मन की बातें मन में ही रह जाती है, पर वह कहती कुछ नहीं, पति के संतोष में ही संतोष खोजती है ।

'हा स्वामी ! कहना था क्या क्या
कह न सकी, कर्मों का दोष !
पर जिसमें संतोष तुम्हें हो,
मुझे उसी में है संतोष ।'

सिर्फ उर्मिला पति से इतना कह सकी इतने में बाहर से कुछ वाणी सुनाई पड़ता है -

'सीता कहती थीं कि - 'अरे रे,
आ पहुँचे पितृपद भी मेरे ! '

इस प्रकार कवि गुप्तजी ने अपने 'साकेत' महाकाव्य के अष्टम सर्ग में कैकेयी के चरित्र को एक मनोविज्ञान के तथ्यों के आधार पर चित्रित किया है । कैकेयी जब पुत्र भरत और संपूर्ण साकेत वासियों के साथ चित्रकूट में राम से मिलती हैं तब आत्मग्लानि और पश्चाताप से दग्ध हो रही है । उसे अपने कुकृत्य से मर्मान्तक पीड़ा होती है । अपनें अपराध को स्पष्ट रूप से स्वीकार लेने से, उसका चरित्र निर्मल होता है । वह स्वार्थमयी कठोर रानी पुनः वात्सल्यमयी सरल, एवं सुशील बन जाती है । सब विरह तो सहते हैं पर कैकेयी चौदह वर्ष तक पश्चाताप की आग में जलती रहती है । कोई उसकी ज्वाला को छू भी नहीं सका ! वास्तव में 'कैकेयी' का चरित्र इस धरातल पर स्थित

है जहाँ वह सभी के धिक्कार का विष स्वयं पीकर दूसरों की हित कामना करती है । सब उसके कुटिल, क्रूर, वंचक, स्वार्थ परायण रूप को देखते हैं लेकिन उसकी सरलता सज्जनता, उच्चाशयता, धीरता आदि नहीं देखते ! देखते तो हैं सिर्फ राम चौदह साल के बाद वह वन से लौटने पर कहते हैं -

'समझी प्रभु ने कसक भरत-जननी के मन की
मूल शक्ति माँ तुम्ही सुयश के इस उपवन की ।'

कैकेयी के दोष का प्रक्षालन कवि गुप्तजी ने किया है । इसी उद्देश्य से गुप्तजी ने 'साकेत' के अष्टम सर्ग में एक अपूर्व प्रसंग की कल्पना की है । कैकेयी का चरित्र आज तक प्रत्येक रामकथा में सदोष रहा, उसके अल्प दोष का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया गया, साथ ही उस पर कलंक लगाने की भी चेष्टा की गयी ।

मगर 'साकेत' में गुप्तजी ने कैकेयी का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है । जो कैकेयी कुटिलता, संदेह और अतुलनीय पुत्र-प्रेम के वश में पड़कर अपना मातृ हृदय खो चुकी थी वही कैकेयी पश्चाताप की आग में अपने आप को जलाकर संदेह को भस्म करती है । इसी कारण से वह चित्रकूट में सभी लोगों को आश्चर्य में डालकर एक नया अपूर्व इतिहास निर्मित करती है ।

कैकेयी की जिह्वा पर तो ताले से लगते जाते हैं तो वह उर्मिला के प्रति सकरुण हो उठती है -

'आ मेरी सबसे अधिक दुःखिनी आ जा,
पिर मुझसे चन्दनलता मुझी पर छा जा ।'

'साकेत' का मूल दर्शन अष्टम सर्ग में प्रतिपादित हुआ है ।

6.11. नवम सर्ग

साकेत एक ऐसी कृति है जिसमें उपेक्षित उर्मिला को पाठकों के सम्मुख उभार कर रख दिया है । इससे हिन्दी साहित्य गुप्तजी का ऋणी है । साकेत का **नवम** और **दशम्** सर्ग तो उर्मिला के अश्रुओं से सिक्त है और यत्र तत्र भी उर्मिला-विरह की झाँकी प्रस्तुत

की है । नवम् सर्ग में विशेषता उर्मिला रुदन व्याप्त है और गुप्तजी ने उर्मिला के विरह वर्णन की विचारधारा में भी स्वच्छन्दता से काम लिया है फिर भी उनके अनुसार नवम् सर्ग में कुछ शेष रह गया है और उनकी भावना के अनुसार आज भी वह अधूरा है । रामचरित मानस में राम-सीता, भरत लक्ष्मण आदि की ही प्रमुखता है लेकिन उर्मिला के महान त्याग और उसकी वेदना की ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया, केवल गुप्तजी ही देख सके और इसलिए साकेत की नायिका का भी पद उर्मिला को ही प्राप्त हुआ । नव परिणीता उर्मिला ने मन में अनेक मधुर स्वप्नों, आकाँक्षाओं और उमंगों को लेकर पतिगृह में प्रवेश किया । उसके जीवन की सुखमय घड़ियों का आरम्भ ही हुआ था कि कल्पना से परे उस पर दारुण विरह का वज्रपात हुआ । वह भी इतना कठोर कि चौदह वर्ष तक उस आघात से विचारी वह रमणी तड़पती रही । उर्मिला की विरह जन्य वेदना, टेस, कसक, तड़पन, आकुलता धड़कन आदि को अधिक तीव्रता एवं व्यग्रता के साथ साकेत में देखा जा सकता है ।

मिलन और विरह प्रेम के दो पथ हैं । जीवन के प्रांगण में मिलन और विरह की आँख मिचोनी का दृश्य मिले तो कोई आश्चर्य नहीं । मिलन में परिस्थिति विशेष में दो हृदय मिलते हैं । दो आत्मायें मिलकर एक हो जाती हैं ! तो विरह में प्रेमी जीवन का विश्लेष हो जाता है अर्थात् संयोग सुखमय है तो वियोग दुखमय फिर भी मानव मन प्रायः मिलन की अपेक्षा विरह की ओर अधिक आकर्षित होता है तथा मन के मर्मी कवियों ने भी विरह को ही मिलन की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है । इसका कारण यही है विरह प्रेम का अकलष रूप है, तप्त स्वर्ण है, विरह प्रेम की जागृत गति है और मिलन सुषुप्ति है । मिलन मधुर प्रेम का अन्त है और विरह जीवन । अतः निस्संकोच सिद्ध हो जाता है कि मिलन की अपेक्षा विरह ही महत्वपूर्ण है । विरह जीवन का चिर सहचर है । जिस क्षण ब्रह्मा ने सृष्टि रचने की कामना की और यह सृष्टि उससे पृथक होकर अव्यक्त से व्यक्त हुयी, उसी दिन विरह की नींव पड़ गयी । इसी कारण यह विरह कीट पतंग से लेकर संपूर्ण चेतन-अचेतन प्राणियों एवं पदार्थों में

व्याप्त दिखाई देता है । इसी विरह के कारण सूर्य और चन्द्र दिन रात चक्कर काटते हैं, अग्नि तीव्र ताप से जलती है, गगन भी मौन होकर चुपचाप ओस के रूप में आँसू बहाता है । इसी विरह के कारण कलियाँ पत्तों पर सिसकियाँ भरा करती हैं, पुष्प मकरंद के रूप में टप-टप आँसू गिराया करते हैं, लताएँ आहें भरा करती हैं और पेड़ पौधे चुपचाप रोया करते हैं । इतना ही नहीं इसी विरह से पीड़ित होकर कोयल, काग, खंजन, कपोत, मैना, चातक आदि रात दिन अपने प्रियतम को पुकारते हुए करुण क्रन्दन किया करते हैं ।

प्रेम की कसौटी विरह है । विरह में ही प्रेम परिपुष्ट होता है और विरहाग्नि में जलकर ही वह कुन्दन बनता है प्रिय, विरह प्रेम का वह पवित्र बन्धन है जिसमें बँधकर प्रेमी कभी मुक्त होने की कामना नहीं करता अपितु सदैव अपने प्रियतम को हृदय में बसाये रखने और उनकी स्मृति से अन्दर जलते रहने में ही अपूर्व आह्लाद का अनुभव किया करता है । यह एक ऐसी पीड़ा है जिसमें अद्‌भुत आनन्द की प्राप्ति होती है और यह विरह ही उस प्रेमी को उस उच्च भूमि पर ले जाता है जहाँ उसे सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में अपने प्रियतम का साक्षात्कार होने लगता है । इस तरह एक लौकिक प्रेम विरह में ही परिपक्व होकर अलौकिक और पारलौकिक प्रेम में परिणित होता है ।

विरह का इतना अधिक महत्व होने के कारण ही इसका काव्य से जन्मजात सम्बन्ध है । आदि कवि ने भी अपने काव्य की नींव विरह के पुष्ट धरातल पर डाली थी क्योंकि क्रौन्च विरह ने ही आदि कवि को काव्य की प्रेरणा दी थी और इसी विरह की व्यथित हृदय हलचल में विश्व विश्रुत राम कथा को यह रूप प्रदान किया था जिसमें प्रचलित होकर वह आज भी सहृदयों के हृदयों के अपूर्व आह्लाद प्रदान कर रही है और जिसका एक अंग साकेत भी है प्रत्येक कवि संयोग के साथ वियोग या विरह के गीत भी गाया करता है । विरह के गीतों में जो कसक, जो गमक एवं जो धड़कन होती उससे काव्य भी सरस एवं कर्णप्रिय हो जाता है । इन्हीं विरह गीतों के कारण कवि जनों को भी पर्याप्त सम्मान एवं आदर प्राप्त होता

और उनके ताम्र पत्र भी सुवर्ण के हो जाते हैं जो उनकी यशवृद्धि में सहायक होते है -

''उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप से ।
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कण के,
क्यों न बनते कवि जनों के ताम्र पत्र सुवर्ण के ।''

यही कारण है कि गुप्त जी भी अपने इस काव्य में सबसे अधिक विरह गान में तल्लीन दिखायी देते हैं ।

राम के वन जाते ही सारी अयोध्या उजड़ जाती है सभी के हृदयों में गहन पीड़ा निवास कर लेती है, परंतु साकेत के राजभवन में उर्मिला की दुनिया तो पूर्णतया उजड़ जाती है । उसकी सभी बहनों को तो पति का सहवास प्राप्त है, वे बड़ी भाग्यशालिनी हैं परंतु उर्मिला को ही कैकेयी के वरदान का सबसे अधिक कष्ट सहना पड़ता है । उसकी माँ ने ठीक ही कहा था -

'मिला न वन ही न भवन ही तुझको ।'

और यह अभागिन अकेले चौदह वर्ष तक घर पर ही पड़े-पड़े तीव्र वेदना में ही दिन बिताती है । वियोग का आरंभ तो प्रभु के वन चले जाने से ही हो जाता है परंतु चित्रकूट की पर्णकुटी के क्षणिक मिलन से तो उसके सुकुमार एवं कोमल हृदय पर वज्रपात हो जाता है क्योंकि उसकी विवशता और परवशता उसे एक क्षण के लिए भी प्रियतम के वक्षस्थल से लगकर अपने हृदय की जलन को शान्त होने का अवसर प्राप्त नहीं होने देती और वह अपने मन की मन में ही रखकर मौन रह जाती है ।

''मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या संभल के
बहें आँसू होवे सखि, सब उपालम्भ गल के ।''

उस क्षण कितनी घुटन, कितनी धड़कन, कितनी तड़पन और कितनी कसक उसके हृदय में उत्पन्न हुयी होगी ! इसकी कल्पना करना भी सर्वथा असम्भव है ।

सीता को पति के साथ होने के कारण वन भी उपवन समान है लेकिन पति वियुक्ता उर्मिला के लिए उपवन भी वन सदृश ही है । अपने मन मंदिर में पति की प्रतिमा स्थापित करके वह विरहिणी विचारी पति के विरह में दिन रात जलती हुई उनकी आरती तुल्य बन जाती है । दिनरात पति के ध्यान में ही मग्न आत्मग्यान भी नहीं रहता । समस्त भोग विलासों को तो वह तिलांजलि दे चुकी है । जो उसके कुल कलंक को धोने में समर्थ हो सके -

''अपने अतुलित कुल में,
प्रकट हुआ था जो कलंक काला,
वह उस कुल बाला ने
अश्रु सलिल से समस्त धो डाला ।''

एकान्त में रोना ही शेष रह गया । राजभवन में तो उसे रोती देखकर बहनें सासें अत्यधिक दुखी होती हैं और यह अभागिन किसी को पीड़ा देना नहीं चाहती । इसीलिए उपवन में पड़ी ही पड़ी रहना अधिक पसंद करती है । **हाय रे दुर्भाग्य !!** यह उपवन का एकान्त भी तो उसके लिए दुखदायी है क्योंकि यहाँ रहकर प्राचीन स्मृतियाँ उसे सताती हैं । कभी विवाह के दिन की याद सताती है तो कभी मधुर मिलन की सुखद स्मृतियाँ तो कभी हास-परिहास की बातें याद आती हैं । क्या करे बेचारी अपनी व्यथा को कम करने के लिए समदुखिनियों से बातचीत करना चाहती है तो इतनी बड़ी नगरी में तो वही एक दुखिनी पति वियुक्ता है -

''प्रोषित पतिकाएँ हों, जितनी, सखि ! उन्हें निमंत्रण दे आ,
समदुखिनी मिलें तो दुखवटे, जा प्रणय पुरस्कार ले आ ।

x x x

इतनी बड़ी पुरी में क्या ऐसी दुखिनी नहीं कोई,
जिसकी सखी बनू मैं, मुझसी हो हँसी रोई ।''

चित्रादि में भी मन नहीं रमता । अब तो उर्मिला विरह वेदना को भी प्यार करने लगती है । उसे तो विरह वेदना में तो प्रिय का अपूर्व संयोग निरंतर प्राप्त है । इसलिए जहाँ विरह उसके लिए

भारस्वरूप है वहाँ उसके लिए आभार रूप भी है । विरह के कारण वह क्षुद्र से क्षुद्र जीवों के प्रति सहानूभूति प्रकट करती है । पतंग, मकड़ी, पेड़ पौधे सभी पर उसे दया आती है क्योंकि संयोग के दिनों में तो उसे उनका दर्द ही मालूम नहीं पड़ता था । अब स्वयं है तो दूसरों के दुःख को भी जानने लगी है -

''चातक मुझको आज ही हुआ भाव का भान,
हाँ वह तेरा रुदन था, मैं समझी थी गान ।''

अब क्या करें प्रियतम के दर्शन तो दुर्लभ हैं । स्वप्न में वह अपने प्रिय से मिल सकती है । उसके नेत्र निद्रा की ही प्रतीक्षा कर रहे हैं -

''आओ, हो आओ तुम्हीं प्रिय के स्वप्न विराट,
अर्ध्य लिए आँखे खड़ीं हेर रही हैं वाट ।''

वह निंदिया का आह्वान कर रही है -

''आजा मेरी निंदिया गूँगी ।
आ मैं सिर आँखों पर लेकर चन्द खिलौना दूँगी ।''
पलक पावड़ों पर, पर रख तू,
आ दुखिया की ओर निरख तू,
मैं न्योछावर दूँगी ।

परंतु न निद्रा आती है और न स्वप्न । यहाँ तक कि जिन नक्षत्रों को गिनते-गिनते वह रात काट रही थी वे भी एक-एक करके विलीन हो जाते हैं । सभी दिन कुछ न कुछ करके काट लेते हैं परंतु उर्मिला तो सिर्फ रो-रोकर ही दिन काटती है -

''बो-बो कर कुछ काटते, सो-सो कर कुछ काल ।
रो-रोकर ही हम मरे, खो-खोकर स्वर ताल ।''

एक तो यह दुःसह विरह ऊपर से इन षट् ऋतुओं का प्रहार उर्मिला..... ! बिचारी क्या करे ? प्रिय पास हो तो बड़ी प्रसन्नता एवं आनन्द से इन ऋतुओं को बिताए परंतु प्रियतम के बिना तो उसे यह ऋतुएँ भी आनन्द रास नहीं देतीं बल्कि वियोग की दस दशाओं से वे गुजराती रहती हैं । वियोग वर्णन में षट् ऋतु तथा वियोग की दस

अवस्थाओं का वर्णन तो कवि परंपरा ही है । भला गुप्त जी क्यों पीछे रहते । उन्होंने भी इसे स्थान दिया है । उर्मिला इतने उत्तम विचारों वाली है कि वह सदैव प्रकृति को प्रसन्न देखना चाहती है क्योंकि सभी को जब सुख मिलेगा तो उसकी बारी एक न एक दिन आवेगी -

''तरसूँ मुझसी मैं ही, सरसे, हरसे, हसें प्रकृति प्यारी,
सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी बारी ।''

लेकिन ऐसा न हो कि वह भी अपने अच्छे दिन आने की राह देखती रह जाय और वह वनमाली आए ही नहीं -

''अपना सुमन लता ने, निकाल कर रख दिया बिना बोले,
आलि ! कहाँ बन माली, झड़ने के पूर्व झाँक ही जोले ।''

क्या करे वह सप्तपदी होकर भी षटपदी जैसा भाग्य कहाँ उसका -

''बैठी है तू षटपदी, निज सरसिज में लीन,
सप्तपदी देवर यहाँ, बैठी मैं गतिहीन ।''

न जाने वह कौन सी बयार चली जिससे वह अपने हेम अली से बिछुड़ गयी -

''सखि मैं भव कानन में निकली,
बन के इसकी वह राख कली ।
खिलते खिलते जिससे मिलने,
उड़ आ पहुँचा हिल हेम अली ।
मुसकाकर अलि, लिया उसको,
तब लौं यह कौन बयार चली ।
पथ देख जियो कह गूँज यहाँ,
किस ओर गया वह छोड़ छली ।''

वह विरहिणी एक मन को तो समझा सकती है लेकिन दो नयनों को कैसे सम्हाले -

''अरे एक मन रोक, थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनों ने शोक मरम खो दिया, रो दिया ।''

आखिर करे भी क्या -

''काल की रुके न चाहे चाल, मिलन से बड़ा बिरह का काल ।''

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उर्मिला एक आदर्श नायिका है और अपने पति को वह आदर्शच्युत नहीं कर सकती है । मिलने की आकांक्षा उसमें है किन्तु वह नहीं चाहती है कि लक्ष्मण लौट आवें । वह स्वयं लक्ष्मण के निकट पहुँच जाना
चाहती है किन्तु उन्हें किसी प्रकार का विघ्न नहीं देना चाहती -

''यही आता है इस मन में ।
छोड़ धाम-धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में ।

x x x

बीच बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट ।
जब वे निकल जायें तब लौटूँ उसी धूल में लोट ।।''

कितना गहन प्रेम है, कितना महान त्याग है, इन पंक्तियों को देखकर नागमती की बरबस याद आती है -

''यह तन जारौं छार करि, कहौं कि पवन उड़ाय,
मकु तिहिं मारग मह परै, कंत धरै जहूँ पाँव ।''

ग्रीष्म काल में सभी शीतलोपचार करते हैं किन्तु उर्मिला न तो गर्म गेह में हो जाकर ग्रीष्म से बचना चाहती है, और न चन्द्रकान्त मणि धारण करना, न चन्दन का लेप करना चाहती है । कपूर भी उसे प्रिय नहीं है । ग्रीष्म में उसके पति ताप लीन रहें और वह शीतलोपचार करे, यह कैसे सम्भव है ! फिर भी उसे जनता का ख्याल है । इसलिए वह पति से कहती है -

''इतना तप न तपो तुम प्यारे,
जले आग सी जिसके मारे ।
देखो ग्रीष्म भीष्म तन धारे,
जन को भी मन चीतो ।
मन को मत यों जीतो ।।

ग्रीष्म के मारे उसके रोम-रोम में आँसू टपक रहे हैं । बरस

घटा बरसूँ 'मैं संग' कहती हुयी, प्राणिमात्र के प्रति संवेद्ना प्रकट करती है । वह भले ही बिरह में जलती रही लेकिन प्रकृति सदा हरी भरी रहे ।

वर्षा काल में इन्द्र गोपिका, मेहंदी, वल्लरियों के सहज विकास को देखकर उसे अतीव हर्ष होता है । परंतु त्रिविध पवन, घनरव, कदम्ब के फूल आदि प्रिय स्मृति में लीनकर देते है जिससे वह अनमनी सी हो उठती है । प्राचीन स्मृतियाँ उसे व्याकुल बना देती है । उस आकुलता में उसे बिजली भी तड़प-तड़प उठती सी जान पड़ती है ।

शरद ऋतु में सर्वत्र नवीन विकास दिखायी देता है । वह शरद में भी अपने प्रियतम का पूर्ण साक्षात्कार करने लगती है । अब वह मछली, भ्रमरी, कोक आदि को देखकर भी संवेदना प्रकट करती है क्योंकि उसे मछली जल में रहकर भी तड़पती हुई दिखायी देती है । चकवा चकवी रात में बिछुड़ कर शोकमग्न दिखायी देते हैं । चन्द्र ज्योत्स्ना में कलकल करती हुयी नदी को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रियतम को पाने के लिए भागी चली जा रही है और उनका प्रियतम अब मिला, अब मिला, किन्तु उर्मिला के प्रियतम का मिलन तो अभी ..... दूर है । इसलिए धड़कने सम्भालती हुयी रह जाती है ।

हेमन्त में सुन्दर पकवान बनाए जाते हैं परंतु अभागिन उर्मिला के भाग्य में यह सब कहाँ ? शीत के मारे अकेली पड़ी उर्मिला का केवल एक ही सहारा है । न वह नाइन से तेल लगवाती है न धूप में बैठती है । इस आकुल अवस्था में भी देवर से प्रजा का हाल पूँछ़ना नहीं भूलती ।

शिशिर ऋतु में पत्ते पीले पड़ जाते हैं, पाला पड़ता है, पतझड़ हो रहा है । इन सब उपद्रवों के कारण वह पति को बन जाने से रोकती है । सभी साधन तो उसके पास ही उपलब्ध है । पतझड़ के प्रति सहानुभूति दिखाती हुयी कहती है -

''पाऊँ मैं तुझे तुम मुझको पाओ,
ले लूँ अंचल पसार पतिपत्र आओ ।''

पतझड़ के उपरांत वसन्त का आगमन होता है । सभी शुष्क एवं नग्न डालियाँ किसलय से भर जाती हैं । आनन्दपूर्वक होली मनायी जा रही है परंतु विरहिणी को यह सब कैसे प्रिय हो बल्कि वह मलयानिल से कहती है -

''जा मलयानिल लौट जा, यहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप ।''

बसन्त का साथी कामदेव उसे अबला समझकर धनुष बाण लेकर उस पर प्रहार करने को आता है परंतु यह वियोगिनी बड़ी दृढ़ता के साथ उसका सामना करने के लिए खड़ी हो जाती है -

''नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो ।
बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह-यह हर नेत्र निहारो ।''

सती उर्मिला में कितना तेज कितना ओज एवं दृढ़ विश्वास है । वह अभागिनी अवश्य है किन्तु अबला नहीं ..... !

साकेतकार ने उर्मिला के विरही जीवन की झाँकी अत्यंत विस्तार के साथ प्रस्तुत की है जिसमें हमें वह प्रिय के वियोग में करवटें बदलती हुई, तीव्र वेदना से तड़पती हुई, स्मृतियों की आँधियों से विचलित होती हुयी, ऋतुओं के प्रहार से अकुलाती हुयी तथा बिरह की विषमता से टप-टप आसूँ गिराती हुयी दिखायी देती है । उसकी इस विरहावस्था में हम विरह की उन संपूर्ण एकादश अंतर्दशाओं के भी दर्शन कर लेते हैं ।

अभिलाषा - एक आदर्श विरहिणी की यही अभिलाषा रहती है कि वह भले ही स्वयं मिट जाय लेकिन प्रियतम को एक दृष्टि देख लें, वह सदैव फलता-फूलता रहे -

''अब जो प्रियतम को पाऊँ ।
तो इच्छा है उन चरणों की रज में आप समाऊँ ।।

आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ ।
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ ।।''

विरहावस्था में विरही का जीवन तिल-तिलकर जलता रहता है और दर्द की दवा प्रेमी से मिलन है । अतः सदैव वह प्रेमी के संबंध में सोचता रहता है तथा मिलन की आकांक्षा उसके हृदय में अंधकारमय गृह के लघु दीप की लौ की भाँति जागृत रहती है । विरह में यही अभिलाषा सबसे प्रधान रूप धारण करती है । उर्मिला के हृदय में भी अभिलाषा जीवित है । वह चाहती है कि उसका पति उसे भूल न जाय -

''आराध्य युग्म के सोने पर
निस्तब्ध निशा के होने पर ।
तुम याद करोगे मुझे कभी,
तो फिर मैं पा चुकी सभी ।''

चिन्ता-चिन्ता और स्मृतियाँ तो उर्मिला के जीवन की अंग ही हैं -

''मन को यों मत जीतो ।
बैठी है यह यहाँ मानिनी, सुध लो इसकी भी तो ।।
इतना तप न तपो तुम प्यारे, जले आग सी जिसके मारे ।
देखो ग्रीष्म भीष्म तन धारे, जन को भी मन चीतो ।''

स्मरण - एक स्मरण ही तो है जिसके सहारे उर्मिला दारुण विरह को व्यतीत कर रही है । इस विरह काल में न जाने कितनी बीती यादें उसे याद आ रही हैं । जब प्रियतम पास नहीं है तो उसकी बातें भी बहुत याद आती हैं । कभी विवाह के समय तो कभी प्रिय का हास-परिहास, कभी देवर से हास-परिहास, न जाने कितनी स्मृतियाँ सता रही हैं । वर्षा ऋतु आती है उसे एक घटना स्मरण आ जाती है -

''मैं निज अलिंद में खड़ी थी सखि एक रात,
रिमझिम दें पड़ती थी घटा छायी थी

गमक रहा था केतकी का गंध चारो ओर,
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भायी थी ।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपूरों से,
चंचला सी चमकी घनाली घहराई थी ।
चौंक देखा मैंने चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
मायी ! मुख लज्जा उसी छाती में छिपायी थी ।।''

गुण कथन - इस विरहावस्था में सदैव प्रिय का ध्यान होने से प्रिय का गुण कथन स्वाभाविक है । उर्मिला को तो शरद में प्रियतम की छवि दिखायी देती है -

''निरखि सखि ये खंजन आए ।
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाए ।।
फैले उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाए ।
घूमे वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ आए ।।
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाए ।
फूल उठे हैं कमल, अधर से यह वेधूक सुहाए ।''

उद्वेग - उद्वेग तो विरह दशा में होता ही है । उद्वेग की अवस्था में उर्मिला स्वयं लक्ष्मण बन जाती है । निरंतर प्रिय के ध्यान में उसे प्रिय ही दिखायी देते हैं । वह अभिमानिनी उन्हें अकेला आया जानकर लौट जाने को कहती है, धिक्कारती है लेकिन प्रियतम यहाँ कहाँ ? तो फिर लक्ष्मण बनकर स्वयं को धिक्कारती है -

''अधम उर्मिले, हाय निर्दयता
पतित नाथ है ? तू सदाशया ।
नियम पालती एक मात्र तू,
सब अपात्र हैं एक पात्र तू ।
मुँह दिखाएगी क्या उन्हें अरी,
मर ससंशया क्यों न तू मरी ।''

प्रलाप - प्रियतम के विरह में उर्मिला प्रलाप करने लगती है -

''भूल अवधि सुध प्रिय से कहती, जगती हुयी कभी-'आओ' ।
किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौंक बोलकर 'जाओ' ।

इसके संबंध में डॉ.नगेन्द का मत है कि - 'उसकी (उर्मिला) की मनोदशा एक प्रकार की जटिलता है । वहाँ आदर्श और कामना के बीच संघर्ष है । आदर्श कहता है **'जाओ'** और भाव कहता है **'आओ'** ।''

कवि ने स्वयं लिखा है - ''मैंने तो यहाँ यही कहना चाहा था जागते समय में उर्मिला भले ही अवधि की सुधि बुधि भूलकर पीड़ा के कारण अपने प्रिय को पुकार उठती थी परंतु स्वप्न में भी वह अवधि से पहले उनका आना नहीं चाहती थी । यदि वे कभी स्वप्न में आ जाते तो **'जाओ'** कहकर वह जाग उठती थी ।''

उन्माद - उन्माद की अवस्था में भी वह स्वयं लक्ष्मण बनकर स्वयं को नहीं धिक्कारती है -

''प्रियतमे, तपो भ्रष्ट मैं ? भला, मत छुओ मुझे, मैं लौट चला ।
तुम सुखी रहो हे विरागिनी, बस विदा मुझे पुण्य भागिनी ।
हट सुलक्षणे, रोक तू न यों, पतित मैं, मुझे रोक तू न यों ।''

व्याधि - प्रियतम के विरह में वह स्वयं आरती बन जाती है -

''मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाम,
जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप ।''

जड़ता - जड़ता के कारण ही तो बिचारी प्रिय के सामने आने पर भी मन की बात नहीं कह सकी -

''मिली मैं स्वामी से, परंतु कह सकी क्या सम्भल के ?
बहे आसूँ होके सखि, सब उपलाम्भ गल के ।''

मूर्छा - पति के वन गमन की बात सुनते ही वह बाला मूर्छित हो जाती है-

''इधर उर्मिला मुग्ध निरी -
कह कर 'हाय' धड़ाम गिरी ।''

उसकी मूर्छित अवस्था का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है -

''सखी ने अंक में खींचा, दुखिनी पड़ सो रही,
स्वप्न में हँसती थी हा ! सखी भी देख रो रही ।''

मरण - मरण विरह की वह अवस्था है जिसमें विरहिणी चेतनाहीन होकर कुछ क्षणों के लिए मृत प्राय हो जाती है । गुप्त जी ने इसका स्पष्ट वर्णन नहीं किया है । उन्होंने इस अवस्था की ओर थोड़ा संकेत छोड़ दिया है -

''अयि शक्तिमयी संभाल तू,
रख थाती यह अश्रु पाल तू ।
यदि मैं न रहूँ नहीं सहीं,
प्रिय की भेंट बने यहाँ यही ।''

इस तरह गुप्त जी ने उर्मिला विरह का वर्णन अत्यंत गहन अनुभूति के साथ किया है जिसमें विरह भावना साकार हो उठी है और उर्मिला आँसुओं का योग पाकर अत्यंत हृदय द्रावक हो गयी है । विरह की अंतः बाह्य सभी दशाओं का वर्णन सुन्दर हुआ है । वह पर्याप्त मनोवैज्ञानिक भी है । उर्मिला का वर्णन रीतिकाल के विरह वर्णन से कहीं अधिक भिन्न है । रीतिकालीन नायिका की भाँति वह हाय तोबा नहीं मचाती । उसके विरह में जलन है, वेदना है - एक ऐसी वेदना जो पूर्ण स्वाभाविक है । वह बहुत अंशों में पूर्ण जागरूक है और विरह के क्षेत्र में कर्तव्य ही उसे प्यारा है । उसके विरह में यदि एक ओर प्राचीन शास्त्रकारों की छाप है तो नूतनता का समावेश भी स्वतः हो जाता है ।

उर्मिला एक नहीं पूरे चौदह वर्ष तक विरहावस्था में दग्ध रहती है । प्रियप्रवास की राधा तो 'अब प्रियतम नहीं मिलेंगे' इसी कारण लोक सेवा में लीन हो जाती है । लेकिन उर्मिला की तो अवधि निश्चित है उसे प्रियतम से मिलनाकांक्षा तो है ही अतः उसे अपने तन-मन दोनों की रक्षा करनी है । वह केवल इतनी प्रार्थना करती है -

''मुझे न भूले उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान ।''

लक्ष्मी, सती आदि से भी वह महान है -

''डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिए उर्मिला, करे प्रतीक्षा सहे सभी घर बैठ ।''

किसी न किसी तरह से वह धीरे-धीरे विरह की अवधि रो-रोकर काट रही है -

''अवधि शिला का उस पर था गुरु भार,
तिल-तिल काट रही थी, दृग-जल-धार ।''

जो उर्मिला अभी तक इस प्रकार महलों में ही चुपचाप आँसू बहाया करती थी, जिसकी ओर कभी अन्य कवियों का ध्यान नहीं गया उसी उर्मिला का चित्र गुप्त जी के कारण साकार हो उठा । गुप्त जी ने उसके विरह का ऐसा अनुपम चित्र चित्रित किया कि पाठकों की सहानुभूति पाकर वह उर्मिला जो उपेक्षिता थी साकेत के प्रमुख पात्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी ।

6.12. बोध प्रश्न

1. गुप्तजी ने मनोवैज्ञानिक आधार पर कैकेयी का चरित्र 'अष्ठम सर्ग' में दिखाया है - विवेचना कीजिए ।
2. नवम सर्ग के आधार पर उर्मिला के चरित्र पर प्रकाश डालिए ।

NOTES

NOTES

इकाई सात : गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाएँ और मार्मिक प्रसंग

इकाई की रूपरेखा

7.0. उद्देश्य

7.1. प्रस्तावना

7.2. गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाएँ और मार्मिक प्रसंग

7.3. उर्मिला-लक्ष्मण के चरित्र पर प्रकाश

7.4. राम के चरित्र में मानवीयता

7.5. साकेत का कौटुंबिक जीवन

7.6. कैकेयी के दोष का प्रक्षालन

7.7. उर्मिला का विरह

7.8. भरत और संजीविनी बूटी

7.9. साकेत-वासियों की रण-सज्जा

7.9.1. वशिष्ठजी की योग-शक्ति

7.9.2. पुष्पवाटिका प्रसंग

7.10. साकेत के मार्मिक प्रसंग-लक्ष्मण-उर्मिला विनोदवार्ता

7.11. राम-सुमित्रा संवाद

7.12. राम का साकेत परित्याग

7.13. चित्रकूट सभा में राम-भरत का मिलन

7.14. कैकेयी का पश्चाताप

7.15. उर्मिला का विरह वर्णन

7.16. साकेतवासियों की रण-सज्जा

7.17. बोध प्रश्न

7.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में आपने साकेत की कथावस्तु जान लिया और सर्ग एक से नौ तक संपूर्ण कथा भी जान लिया । उपेक्षिता कैकेयी के पात्र और उर्मिला का विरह अष्ठम और नवम सर्ग में अध्ययन किया ।

7.1. प्रस्तावना

इस इकाई अध्ययन के बाद आप गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाओं तथा मार्मिक प्रसंग से परिचित होंगे । तदनंतर राम के चरित्र में मानवीयता, कैकेयी का पश्चाताप, भरत और संजीविनी बूटी, वशिष्ट जी की योग शक्ति आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

7.2. गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाएँ और मार्मिक प्रसंग

गुप्तजी का 'साकेत' यद्यपि परंपरागत राम-कथा का ही आख्यान करता है आदि कवि वाल्मीकि से चली आती राम-लक्ष्मण-सीता और अयोध्या परिवार की कथा है, पर गुप्तजी ने उसे उसी रूप में प्रस्तुत नहीं किया ।

प्रत्येक युग में कवि अपने सुविधा के लिए कथा को ढालता रहा है । 'वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण, अत्रि रामायण, भव भूति रामायण, तुलसी का मानस' आदि में राम-कथा में यत्र तत्र परिवर्तन है । इसी कारण महाकवि तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस' में लिखा -

'नाना भाँति राम अवतार,
रामायण शत कोटि अपार ।'

आधुनिक काल में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी ने राम कथा में पर्याप्त परिवर्तन किये है । अन्य रामायणों में राम-कथा राम की ही कथा है, परंतु 'साकेत' में राम की कथा उर्मिला और लक्ष्मण की कथा बन गयी है ।

गुप्तजी ने अनेक उद्‌भावनाएँ की है - इनमें राम-कथा के

परंपरित रूप में परिवर्तन हुआ है और बाकि रामायण में उपेक्षित अंशों और पात्रों पर भी प्रकाश डालने का अवसर गुप्तजी को ही मिला है ।

साकेत की मौलिक उद्‌भावनाएँ इस प्रकार है -

1. उर्मिला-लक्ष्मण के चरित्र पर प्रकाश ।
2. राम के चरित्र में मानवीयता ।
3. साकेत का कौटुंबिक जीवन ।
4. कैकेयी के दोष का प्रक्षालन
5. उर्मिला का विरह ।
6. भरत और संजीविनी बूटी ।
7. साकेत-वासियों की रण-सज्जा ।
8. वशिष्ठ जी की योग-शक्ति ।
9. पुष्पवाटिका प्रसंग ।

7.3. उर्मिला-लक्ष्मण के चरित्र पर प्रकाश

संस्कृत-हिन्दी और बाकि सभी कवियों ने राम-कथा में उर्मिला के चरित्र पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया हैं । कवियों की दृष्टि से उर्मिला उपेक्षिता नारी रही । मैथिलीशरण गुप्तजी ने 'साकेत' की रचना उर्मिला के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए की है । 'साकेत' में गुप्तजी ने शुरू से ही उर्मिला और लक्ष्मण के जीवन एवं कार्य-कलापों को प्रमुखता दी गई है । लक्ष्मण-उर्मिला की विनोद, प्रेम, हास-परिहास, दाम्पत्य जीवन की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की गयी है । पति-पत्नी से ज्यादा वे प्रेमी-प्रेमिका के रूप में दिखाई देते हैं । 'लक्ष्मण को उर्मिला और उर्मिला को लक्ष्मण' नित्य नूतन सौंदर्य के अवतार के रूप में ही दिखायी देते हैं इसी कारण उनके प्रेम में नित्य-नूतन या नवीनता दिखाई हैं ।

उर्मिला-लक्ष्मण की जोड़ी पुनः साकेत में चित्रकूट संदर्भ में दिखाई देती है । उर्मिला-लक्ष्मण के विरह की गहनता और भावों की विषमता का चित्रण, और दोनों के एक क्षण के मिलन की कल्पना सर्वथा मौलिक और नवीन है । उर्मिला को देखते ही

लक्ष्मण प्रिया के चरणों में गिर पड़ना और प्रिया प्रियतम के चरणों को पकड़कर आँसुओं से भिगना सर्वथा मौलिक और मार्मिक भी है -

'गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया-पद-तल में ।
वह भीग उठी प्रिय चरंण धरे दुग-जल में ।'

उर्मिला की वाणी मूक होकर कण्ठ अवरुद्ध हो जाती है । वह बहुत कुछ कहना चाहती है लेकिन भावातिरेक के कारण कुछ भी नहीं कह पाती । एक क्षण के दर्शन में ही संतोष हो जाती है ।

चौदह वर्ष की विरहावधि के पश्चात यह युगल प्रेमी अंतिम सर्ग में दिखाई देते हैं । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि विरह की अग्नि में तप कर मिलन और भी सुखद हो जाता है । उर्मिला का संपूर्ण व्यक्तित्व उल्लासित होकर पति से मिलने के लिए इंतजार कर रहा है । अंत में उर्मिला-लक्ष्मण का मिलन चौदह साल के बाद होता है । उर्मिला को यह डर था कि लक्ष्मण उसे पहले जैसे मोहेंगे कि नहीं ? क्योंकि उसका यौवन ढल चुका था, अब वह प्रिय को कैसे रिझायेगी ?

'पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं ?
वह खोया धन आज कहाँ सखी पाऊँगी ?'

जब लक्ष्मण आकर उर्मिला को अपने बाहों में आलिंगन कर लेता है तो उसे सहसा विश्वास नहीं होता कि वह अपने स्वामी के पास है -

'नाथ नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया ?'

स्वयं गुप्तजी ने एक बार उर्मिला के विरह के बारे में कहा भी था - **'मुझे ऐसा लगता है कि मैंने उसे यदि फिर छेड़ा तो वह फूल की भाँति झड़ बिखरेगा !'**

साकेत में उर्मिला की कथा एक प्रेममयी, पति-अनुरक्ता तथा विश्वकल्याण कामना से अभिभूत नारी के रूप में है । उर्मिला की निष्ठा, त्याग निस्वार्थ भावना सराहनीय है । उर्मिला भारतीय नारी जीवन का आदर्श प्रतिनिधि है ।

सीता तो पति के साथ वन चली गयी । सीता के लिए पति का सुख तो था जिसको हर नारी चाहती है । लेकिन उर्मिला के भाग्य में वह सुख भी नहीं था, वह राजभवन में रहकर भी एक विरहिणी, वियोगिनी, सन्यासिनी सी रही ।

अंत में राम तक उर्मिला की प्रशंसा करते हैं -

'तूने तो सहधर्म चारिणी के भी ऊपर,
धर्म स्थापना किया भाग्यशालिनी इस भूपर ।'

कवि गुप्तजी ने उर्मिला के चरित्र के झाँकी एक ही वाक्य में की है -

'आँसू नयनों में हँसी बदन पर बांकी ।'

7.4. राम के चरित्र में मानवीयता

राम-कथा में राम का चरित्र ईश्वरीय अवतार के रूप में चित्रित होता रहा है, इसी कारण राम साधारण मानव के ऊपर थे । किंतु आधुनिक कवि गुप्तजी ने साकेत में राम का चरित्र एक आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है । गुप्तजी यह मानते हैं कि वह ईश्वरीय अंश जरूर है फिर भी वह साकेत परिवार के एक सदस्य हैं । 'साकेत' के राम नर-लीला दिखाने या करने के लिए अवतरित नहीं हुए हैं, उसके बदले एक आदर्श मानव के रूप में, तथा कौटुंबिक भावना की प्रतिष्ठा करने के लिए अवतार हुआ था । राम के चरित्र के द्वारा गुप्तजी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि अगर मानव चाहे तो ईश्वरीय गुण संपन्न भी बन सकता है । 'साकेत' में राम का चरित्र विश्व में आर्य सभ्यता का प्रचार-प्रसार करना है । 'राम' अवतारपुरुष होते हुए भी उसके चरित्र और कार्य, सहज मानव की बुद्धि में बैठ जाते है यह भी गुप्तजी के मौलिक उद्‌भावनाएँ है ।

7.5. साकेत का कौटुंबिक जीवन

गुप्तजी हमेशा परिवार-प्रथा के पक्षधर है, इसलिए साकेत में पारिवारिक जीवन का चित्र अंकित करने का उन्होंने पूर्ण प्रयास किया है । गुप्तजी के पहले सभी रामायणकारों ने राम-सीता,

दशरथ, कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, भरत आदि के बारे में लिखा हैं । गुप्तजी ने सभी पारिवारिक जीवन में व्याप्त मूल-भावनाओं को मुखरित करने का प्रयास किया है । पारिवारिक जीवन में सद्-असद् सभी प्रवृत्तियों का समावेश हो गया है, एक ओर अद्वितीय पति-पत्नी, भाई-भाई, देवर-भावज, बहिन-बहिन, स्वामी-सेवक का संबंध है तो दूसरी ओर सेवकों द्वारा (मंथरा) कान भरे जाना और सौतिया डाह आदि का अद्वितीय विश्लेषण गुप्तजी ने किया है । उर्मिला-लक्ष्मण, माण्डवी-भरत, श्रुतकीर्ति-शत्रुज्ञ आदि को पारिवारिक जीवन की झाँकी उल्लेखनीय है ।

7.6. कैकेयी के दोष का प्रक्षालन

बाकि रामायणकारों के द्वारा अब तक कैकेयी का चरित्र सदोष रहा, उसकी कुटिलता का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया गया और उसे दोषयुक्त करने की चेष्टा भी की गयी । लेकिन रामचरितमानस में तुलसीदास उसे कुछ दोष-मुक्त करने की चेष्टा की है ।

'नाम मंथरा मंद मति, चेरी कैकेयी केरि ।
अजस पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ।'

देवी सरस्वती ने देवों के आग्रह के कारण अयोध्या आकर मंथरा की मति फेर चली गयी ।

लेकन गुप्तजी ने कैकेयी चरित्र के इस दोष का मूल कारण - सौतियाडाह कहा है । अयोध्या के राजा दशरथ की तीन रानियों में से 'कैकेयी' का चरित्र एक दिव्य चरित्र है, जो पूर्ण मानवीय धरातल पर स्थित एवं उसमें स्त्रियोचित सभी गुण दोष विद्यमान हैं । रानी कैकेयी का चरित्र स्थिर चरित्र न होकर परिस्थितियों के अनुकूल गतिशील है । इसलिए वह अधिक स्वाभाविक और विशिष्टपूर्ण है । राजा दशरथ की अनिन्द्य सुन्दरी यह नारी अब तक राम-कथाओं में सदैव भर्त्सना तथा घृणा की पात्री रही, किन्तु गुप्तजी ने 'साकेत' में कैकेयी के चरित्र को मनोविज्ञान के आधार पर चित्रित किया है । कैकेयी पर सबसे बड़ा दोष यह है कि राम जैसे व्यक्ति को उसने वन भेजा और अपने पुत्र को राज्य-प्राप्ति का

वर माँगा । गुप्तजी ने वात्सल्यमयी नारी के मन में उत्पन्न **सौतिया डाह** को इस अपराध का कारण बताया है । राजा दशरथ का यह मृत्यु भरत को राम राज्याभिषेक के समय न बुलाना कैकेयी के मन में द्वन्द्व का आरंभ करता है ।

'भरत से सुत पर भी संदेह,
बुलाया तक न उन्हें जों गेह ।'

यही प्रश्न बृहदाकार से बार-बार उठता रहता है । भरत को क्यों नहीं बुलाया ? और यही बिन्दु क्रमशः संशय का विराट-रूप धारण कर लेती है, ममता से भरा दिल मचल उठता है और संपूर्ण देह संशय से विषाक्त हो जाती है ।

कैकेयी यह भी जानती थी कि राजा दशरथ 'राम' को अपने प्राण से भी अधिक चाहते हैं । लेकिन भरत को ननिहाल से न बुलाकर राम को युवराज बनाने के पीछे क्या कोई क्रूर चाल है ?

इसके बाद कैकेयी यही सोचती है कि इसमें अवश्य कौसल्या का हाथ है । तब **सौतिया डाह** से भरे क्षोभ से उसका शरीर जलने लगता है और अपने बेटे के प्रति हुए अन्याय के प्रतिकार के लिए **चंडी** बन जाती है । वह दशरथ से दो वर माँगती है ।

जब वही कैकेयी, अपना पुत्र भरत और संपूर्ण साकेत निवासियों के साथ चित्रकूट में राम से मिलती है, तब वह आत्मग्लानी और पश्चाताप से दग्ध हो जाती है । **उसे अपने कुकृत्य से मर्मान्तक पीड़ा होती है । अपने अपराध को स्पष्ट रूप से स्वीकार लेने से उसका चरित्र निर्मल होता है । वह स्वार्थमयी कठोर रानी पुनः वात्सल्यमयी सरल एवं सुशील बन जाती है । चौदह साल तक पश्चाताप की आग में अपने आप जलती रहती है ।**

इस प्रकार कवि गुप्तजी ने अपने 'साकेत' महाकाव्य के अष्टम सर्ग में कैकेयी के चरित्र को एक मनोविज्ञान के तथ्यों के आधार पर चित्रित किया है । इसी कारण से कैकेयी चित्रकूट सभा

में सभी लोगों को आश्चर्य में डालकर एक अपूर्व इतिहास निर्मित करती है ।

साकेत के अष्टम सर्ग संपूर्ण गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावना और अत्यंत मार्मिक भी है ।

7.7. उर्मिला का विरह

उर्मिला लग-भग सभी रामायणकारों से उपेक्षिता रही । गुप्त जी ने 'साकेत' की रचना उर्मिला के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए की हैं ।

'साकेत' में उर्मिला के विरहमय और अभिशप्त जीवन की प्रधानता दी गई है ।

उर्मिला समस्त वियोग सह लेती है । प्रिय के पक्ष में विज्ञ नहीं बनती । जब लक्ष्मण राम के साथ वन जाने के लिए निश्चय कर लेता है तब उर्मिला अपने हृदय पर पत्थर रखकर लक्ष्मण को भेजती है । **'अवधि शिला का भार' को 'उर' पर धारे हुए वह 14 वर्ष व्यतीत करती हैं, पर दोष किसी को नहीं देती - 'यह मेरे कर्मों का दोष' कहकर ही चुप हो जाती है ।** उर्मिला के लिए विरह एक अग्नि-परीक्षा है । वह राजमहल में रहकर भी वियोगिनी रही है । 'साकेत' में उर्मला का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली है । सीता ने तो वन को ही राजभवन बनाया था और उर्मिला ने राजभवन को ही तपस्विकार का उटज बना लिया था । उर्मिला के चरित्र में एक समर्पित व्यक्तित्व का उदात्त रूप हमें देखने को मिलता है । वह स्वयं प्रियतम के विरह में अपार कष्ट अनुभव कर रही है तथापि वह समस्त विश्व के कल्याण की कामना करती है, ईर्ष्या द्वेष की भावना उसमें कहीं नहीं है । उसका चरित्र सर्वथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप है और वह 'साकेत' की अनुपम निधि है ।

साकेत के नवम और दशम सर्गों में उर्मिला के विरह का मार्मिक वर्णन है । यह गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावना है ।

कवि गुप्तजी ने एक बार उर्मिला के विरह के बारे में कहा

भी था - ''मुझे ऐसा लगता है कि मैंने उसे यदि फिर छेड़ा तो वह फूल की भाँति झड़ बिखरेगा ।'' कवि गुप्तजी ने उर्मिला के चरित्र के झाँकी एक ही वाक्य में प्रस्तुत की है -

'आँसू नयनों में हँसी वदन पर बाँकी ।'

7.8. भरत और संजीविनी बूटी

अब तक रामायणकारों ने अपनी रामकथा में यही कहा है कि राम-रावण युद्ध में लक्ष्मण मूर्छित हो जाता है । हनुमान द्वारा हिमालय से संजीविनी बूटी लाने के लिए कहते है । हनुमान स्वयं संजीविनी पर्वत को ही उठाकर शीघ्र ही लौटते है । लेकिन गुप्तजी ने आधुनिक कवि होने के नाते यह मानने को तैयार नहीं कि हनुमान संजीविनी पर्वत को उठाकर ला सकता !

इसलिए साकेत में संजीविनी बूटी भरत के पास ही थीं । भरत को एक योगी ने संजीविनी बूटी दी थीं -

''मानस सरोवर से आये थे
संध्या समय एक योगी,
मृत्युंजय की यह निश्चय
मुझ पर कृपा हुई होगी ।
वे दे गए मुझे यह औषधि
संजीविनी नाम जिसका,
क्षत-विक्षत जन को भी जीवन
देना सरल काम जिसका ।''

यह गुपतजी की मौलिक उद्‌भावना है । इसके लिए दो कारण हैं - पहला कारण, इतनी शीघ्र हनुमान हिमालय से बूटी नहीं ला सकता, अतः उन्हें मार्ग में बूटी मिल जाने से समय की बचत हो गयी । दूसरी कारण, भरत के पास संजीविनी होने के कारण हनुमान द्वारा भरत को राम-रावण युद्ध संबंधी सारी कथा सुनाने का सुअवसर निकलवा दिया ।

7.9. साकेत-वासियों की रण-सज्जा

साकेत का यह प्रसंग सर्वथा मौलिक है । हनुमान के द्वारा

जब लक्ष्मण की स्थिति साकेतवासियों को ज्ञात होता है तब भरत-शत्रुज्ञ ही नहीं सारी पुरः वासियों ने युद्ध के लिए सिद्ध हो जाते है । साकेत में भरत साधु बनकर चुप चाप निष्क्रिय नहीं रहता है । संपूर्ण साकेतवासियों के रक्त, प्रतिशोध की भावना से जागृत होती है ।

उर्मिला पति की मूर्छा पर वीरांगना बन जाती है और खुद क्षत्राणि होने के नाते स्वयं रण-रंग में पति के साथ देना चाहती है । यह भी गुप्तजी की मनोवैज्ञानिक धरातल पर सर्वथा मौलिक कल्पना है । उर्मिला की धैर्य और वीरता को देखकर संपूर्ण साकेतवासियों में भी वीरता का संचार होकर प्रतिशोध लेना चाहते हैं । उर्मिला उन सब को आदेश देती है कि **'हमें वहाँ का धन-दौलत लूटकर यहाँ नहीं लाना है, भले ही उसे वही सिन्धू में डुबा देना ।'** यहाँ कवि, राष्ट्रीय-भावना दिखाते हैं ।

7.9.1. वशिष्ठजी की योग-शक्ति

गुरु वशिष्ठ जी अपनी योग शक्ति के द्वारा साकेतवासियों को लंका के दृश्य दिखाते हैं । यहाँ पर कवि को संपूर्ण मौलिक भावना हम देख सकते हैं । लक्ष्मण की मूर्छा स्थिति से रोष-तप्त जन को शांत करने के लिए ही वशिष्ठजी योग-शक्ति का प्रयोग करके उसके द्वारा पूरा लंका के दृश्य दिखाते हैं ।

7.9.2. पुष्पवाटिका प्रसंग

उर्मिला की स्मृति के माध्यम से कवि ने इस प्रसंग को दिखाया है । यह प्रसंग में कवि की मौलिक भावना यही है कि पुष्पवाटिका में सिर्फ राम-सीता ही परस्पर दर्शन नहीं करते है, उक्त अवसर पर उर्मिला भी वही उपस्थित थी और लक्ष्मण को देखते ही उन्हें अपना हृदय अर्पित कर बैठी -

'उनकी मुसकान देख ली,
अपनी स्वीकृति आप लेख ली ।'

7.10. साकेत के मार्मिक प्रसंग - लक्ष्मण-उर्मिला विनोदवार्ता

गुप्तजी ने साकेत के आरंभ ही लक्ष्मण-उर्मिला के विनोद-वार्ता से शुरु की है । उन दोनों के संवाद मुख्यता तीन बार कवि ने दिखाया है । पहला संवाद 'साकेत' के आरंभ में ही है । नव-दम्पति के प्रेम-हास-परिहास विनोद, पति-पत्नी की हार, हार में जीत यह सब बड़ा ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है । (इसे पढ़ते ही पाठक-गण सोच में पड़ जाते है कि उर्मिला 14 साल तक लक्ष्मण से बिछुड़कर कैसी जी थी ? उसके विरह में उसकी स्थिति क्या होगी ? विरह-वेदना वह अकेली किस प्रकार भोगी ? नाना प्रकार के जिज्ञासा में पड़ जाते हैं । यह संपूर्ण मार्मिक प्रसंग है ।)

दूसरा संवाद चित्रकूट के प्रसंग में है । यहाँ विरहिणी उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन अत्यन्त हृदय-द्रावक और मार्मिक है । इस प्रसंग से पाठक गुप्तजी की अद्‌भुत प्रतिभा का कल्पना कर सकते हैं ! उर्मिला अभी लक्ष्मण से नहीं मिली सब एक दूसरे से मिल लिये । उर्मिला संकोच के कारण लक्ष्मण की तरफ देख भी नहीं सकती है । संकोची लक्ष्मण उर्मिला की तरफ ध्यान भी नहीं देते, तब सीता ही बहन की व्यथा जानकर ताल सम्पुदका लाने के बहाने लक्ष्मण को कुटिया के अंदर भेजती है । जैसे लक्ष्मण कुटिया में घुसते हैं वहाँ **'कोणस्थ उर्मिला रेखा'** दिखाई देती है । लक्ष्मण अचरज में पड़ जाता है कि यह उर्मिला या उसकी छाया ! एक क्षण के लिए एक दूसरे से दर्शन होते है । उर्मिला कहती है -

'मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी,
मैं बाँध न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी ।'

तीसरा संवाद 'साकेत' के अंत में है । 14 साल के बाद उर्मिला-लक्ष्मण का हृदय-द्रावक मिलन होता है । प्रिय आगमन के सूचना पाते ही उसका अंग-अंग थिरकने लगता है साथ ही उर्मिला उदास भी होती हैं क्योंकि -

'पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं ?
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं ।'

उर्मिला की सुख्-सुखमयी अवस्था बड़ी ही रमणीय और मार्मिक है । जब लक्ष्मण आकर उसे आलिंगन कर लेते है, तब सहसा उसे विश्वास ही नहीं होता कि वह अपने स्वामी के पास है -

'नाथ नाथ क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया ? '

7.11. राम - सुमित्रा संवाद

राम-सुमित्रा संवाद - यह प्रसंग भी अत्यंत रमणीय और मार्मिक है । राम, वन गमन के लिए सब तैयारियाँ करके माता कौसल्या से आशीर्वाद और विदा के लिए आये है । माँ का वात्सल्य उमड़ पड़ता है । वह पुत्र के लिए सौत से भीख तक माँगने के लिए तैयार हो जाती हैं, पर उसी समय वहाँ सुमित्रा गरजती हुई आ जाती है । वह वीर क्षत्राणी होने के नाते कभी भी 'भिक्षा' लेना पसंद नहीं करती हैं । 'क्षत्रिय होकर भिक्षा माँगेंगे ? हमें जो कुछ लेना होगा, क्षत्रिय तेज के अनुसार अपनी भुजाओं के बल पर लेंगे ।' वह कहती हैं -

'वीरों की जननी हम हैं,
भिक्षा-मृत्यु सम हमें है ।
राघव शांत रहोगे तुम ?
क्या अन्याय सहोगे तुम ?
मैं न सहूँगी ! लक्ष्मण तू ?
नीरव क्यों है इस क्षण तू ? '

यहाँ सुमित्रा को एक वीर क्षत्राणी के रूप में बहुत ही मार्मिक रूप से गुप्तजी ने दिखाया है ।

7.12. राम का साकेत परित्याग

संपूर्ण साकेत के पुरवासियों की स्थिति और दशा बड़ी दयनीय है । वे अत्यंत शोक में डूबे हैं । उर्मिला अपनी उर पर पत्थर रखकर पति को वन भेजने में निमग्न हैं । पति वियुक्ता उर्मिला विरह की कल्पना से ही मूर्छित हो जाती है । उस मार्मिक प्रसंग देखिए -

'उस मूर्छित वधू का सिर,
गोदी में रक्खे अस्थिर,
कौशल्या माता भोली,
धाड़ मारकर यों बोली -
देव वृन्द ! देखो नीचे,
मत मारो आँखें मींचे ।'

राम-लक्ष्मण और सीता वन गमन के लिए जा रहे है तब दोनों तरफ साकेत वासियों ने इकट्टे होकर मार्ग रोक रहे हैं -

'राजा हमने राम तुम्ही को है चुना,
करो न तुम यों हाय ! लोकमत अनसुना ।
जाओ यदि जा सको रौंद हमकों यहाँ,
यों कह पथ में लेट गए बहुजन वहाँ ।'

यह सब बहुत ही मार्मिक प्रसंग हैं ।

7.13. चित्रकूट सभा में राम-भरत का मिलन

राम-सीता और लक्ष्मण के बीच बातें हो रहें हैं तभी खग-मृग भागे आते देख लक्ष्मण शंका प्रकट करता है कि शायद भरत अपने दल-बल के साथ युद्ध के लिए आ रहा होगा !

तब राम ने शंका दूर करते है - इतने में भरत-शत्रुज्ञ राम-लक्ष्मण एक दूसरे से चिपट लेते हैं ।

इसका वर्णन गुप्तजी ने बड़ा ही मार्मिक एवं हृदयग्राही रूप से चित्रित किया है -

'प्रतिमाएँ सम्मुख एक-एक की दो दो ।
रहे गए युग्म स्वर्वेद्य आप ही आधे ।
जगती ने थे निज चार चिकित्सक साधे ।'

मिलन का रूप और भी रमणीय है ।

'दोनों आगत आ गिरे दण्डवत नीचे,
दोनों से दोनों गये हृदय पर खींचे ।
सीता चरणामृत बना नयन जल उनका,
इनका दृगम्बु अभिषेक सुनिर्मल उनका ।'

7.14. कैकेयी का पश्चाताप

इस चित्रकूट प्रसंग में गुप्तजी ने कैकेयी चरित के ऊपर जो दोष और कलंक को बाकि रामायणकारों ने छोड़ दिए थे उसको धोने का प्रयास किया है । साकेत के अष्टम सर्ग में (चित्रकूट प्रसंग) कैकेयी के निष्कलंक हृदय को परिलक्षण करने के वास्ते ही है ।

कैकेयी अपने किए हुए कार्य के कारण पश्चाताप की आग में अपने आप को जलाकर भस्म हो जाती है । उसके मन की भावनाओं को गुप्तजी ने'साकेत' के चित्रकूट प्रसंग में बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है ।

इस प्रकार कवि गुप्तजी ने कैकेयी के दोष का प्रक्षालन किया है । इसी उद्देश्य से गुप्तजी ने 'साकेत' के अष्टम सर्ग में एक अपूर्व प्रसंग की कल्पना की है । कैकेयी का चरित्र आज तक प्रत्येक रामकथा में सदोष रहा, उसके अल्प दोष का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया गया, साथ ही उस पर कलंक लगाने की भी चेष्टा की गयी ।

मगर 'साकेत' में गुप्तजी ने कैकेयी का चरित्र बड़ा ही मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है । जो कैकेयी कुटिलता संदेह और अतुलनीय पुत्र प्रेम के वश में पड़कर अपना मातृ-हृदय खो चुकी थी वही कैकेयी पंश्चाताप की आग में अपने आपको जलाकर संदेह को भस्म करती है । इसी कारण से साकेत के अष्टम सर्ग में चित्रकूट के सभा के लोगों को आश्चर्य में डालकर एक अपूर्व इतिहास निर्मित करती है । यह संपूर्ण मार्मिक प्रसंग है । पढ़ते-पढ़ते अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं ।

7.15. उर्मिला का विरह वर्णन

कवि ने उर्मिला की विरह पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है । अपने प्रिय के वियोग में जलती हुई उर्मिला का विरह सिर्फ 'साकेत' का ही नहीं बल्कि हिन्दी काव्य का प्राण है ।

'साकेत' में उर्मिला की विरहजन्य कसक, वेदना, पीड़ा, कराहं, तड़पन, आकुलता वह धड़कन आदि को अधिक तीव्रता एवं उग्रता के साथ अत्यंत मार्मिक रूप से कवि ने चित्रित किया है । उर्मिला के लिए साकेत में कवि ने नवम और दशम सर्ग रखा गया है ।

7.16. साकेतवासियों की रण-सज्जा

यह प्रसंग भी अत्यंत मार्मिक और रमणीय है । इस में कवि की कल्पना मर्मस्पर्शिनी शक्ति तथा सहृदयता का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है ।

अब तक की रामकथा में यह दोष था कि भरतादि सभी जन लक्ष्मण की मूर्छा प्रसंग सुनकर भी कुछ भी नहीं करते हैं । अयोध्यावासियों में जोश और प्रतिकार की भावना नहीं दिखायी देता हैं ।

लेकिन 'साकेत' में गुप्तजी ने इस प्रसंग का संपूर्ण रूप से बड़ा ही भावमय वर्णन किया है । जब 'साकेत' में भरत को हनुमान द्वारा लक्ष्मण के मूर्छित की सूचना मिलती हैं सहसा कातर हो उठते हैं । माण्डवी बड़ी मार्मिक बात कहती है -

'कायर हो तुम आर्यपुत्र होकर नर नामी,
तो अबला क्या करे, बता दो मुझको स्वामी ।

इससे भरत के मन में उत्साह का संचार करता है । उन्हें अपने साधु वेश पर क्षोभ होता है तथा वह अकर्मण्यता पर रुष्ट हो जाते हैं -

बैठा हूँ मैं मण्ड साधुता धारण करके,
अपने मिथ्या भरत नाम को नाम न धरके ।

भरत का दर्प हुँकार उठता है -

कलुषिब कैसे शुद्धि सलिल को आज करुँ मैं ?
अनुज मुझे रिपु रक्त चाहिए डूब मरूँ मैं ।।

भरत के ये कथन अत्यंत मार्मिक एवं भावपूर्ण है ।

कैकेयी आँसू रोककर कहती है -

'भरत जाएगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी ? '

इसके बाद कैकेयी आगे कहती है -

'मैं निज पति के संग गयी थी असुर समर में,
जाऊँगी अब पुत्र संग भी अरि समर में ।'

भरत सबको अपने पुरुषत्व की दुहाई देकर रोकते हैं । माताएँ, भाभियाँ और पत्नी उनके मस्तक पर टीका करती हैं ।

सिर्फ साकेत राजभवन में ही नहीं संपूर्ण साकेतवासियाँ रण-रंग में जाने के लिए सिद्ध होते हैं । माताएँ अपने पुत्रों को, पत्नियाँ अपने पतियों को, बहने अपने भाइयों को सजाने लगती हैं ।

इस प्रसंग से हमें यह ज्ञात होता है कि हर एक व्यक्ति की रग-रग में राष्ट्र के प्रति प्यार कूट-कूट भरी थी ।

स्त्रियाँ भी पतियों के साथ पुरुष वेष में जाने के लिए तैयार होती है -

'पुरुष वेष में मैं भी साथ चलूँगी प्यारे,
राम-जानकी संग गये, हम क्यों हों न्यारे ?

वीरांगना उर्मिला सहसा उपस्थित होती है तथा लंका लूटने का निषेध करती है । उसका क्षत्राणि रूप अत्यंत मार्मिक और रमणीय है ।

कवि ने इस प्रसंग में साकेतवासियों में - ''उत्साह, स्वाभिमान; त्याग, दया, स्वदेश-प्रेम, मातृ-भूमि के प्रति अति श्रद्धा आदि भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं '' यह दिखलाया है ।

7.17. बोध प्रश्न

1. गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाओं पर एक लेख लिखिए ।
2. साकेत के मार्मिक प्रसंगों पर प्रकाश डालिए ।
3. 'साकेतवासियों की रण सज्जा पर' - विवेचन कीजिए ।

NOTES

इकाई आठ : महाकाव्य की दृष्टि से साकेत

इकाई की रूपरेखा

8.0. उद्देश्य

8.1. प्रस्तावना

8.2. महाकाव्य की दृष्टि से साकेत

8.3. महाकाव्य का लक्षण और तत्व

8.3.1.शीर्षक का नामकरण

8.4. पाश्चात्य मतानुसार महाकाव्य

8.5. 'साकेत' का कला पक्ष - एक विवेचन

8.6. साकेत की भाषा

8.6.1. संष्कृत शब्दों की प्रधानता

8.6.2. प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग

8.6.3. मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्राचुर्य

8.6.4. शब्द शक्तियाँ

8.6.5. अनुचित सुकाद की योजना

8.6.6. शैली

8.6.7. चित्रात्मकथा

8.6.8. संवादात्मक वैषिष्ट्य

8.6.9. अलंकार विधान

8.6.10. छंद विधान

8.7. बोध प्रश्न

8.8. सहायक पुस्तकें

8.0. उद्देश्य

पिछेले इकाई में आपने गुप्तजी की मौलिक उद्‌भावनाएँ और मार्मिक प्रसंगों के बारे में अध्ययन किया । इससे 'साकेत' की विशेषता और गुप्तजी की नवीन भावना के बारे में जानकारी प्राप्त कर लीं ।

8.1. प्रस्तावना

इस इकाई में महाकाव्य का लक्षण-पाश्चात्य और भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार आप अध्ययन करेंगे । कला-पक्ष की दृष्टि से साकेत की विवेचना कर सकेंगे । गुप्तजी की भाषा, शैली, अलंकार विधान आदि के बारे में भी अध्ययन करेंगे ।

8.2. महाकाव्य की दृष्टि से साकेत

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी से रचित 'साकेत' सर्वश्रेष्ठ कृति है । गुप्तजी को साकेत के माध्यम से ही हिन्दी-साहित्य में अपने युग के प्रथम श्रेणी के काव्यकार माना जाता है । इस काव्य के द्वारा मानव-जीवन का व्यापक एवं सर्वांगीण विकास दिखाने का अवसर कवि को प्राप्त हुआ है । 'साकेत' काव्य को महाकाव्य कहने में कोई आपत्ति नहीं है ।

'महाकाव्य' शब्द महत् + काव्य दो शब्दों के योग से निसृत हुआ है । 'महत्' का अर्थ - महान् और काव्य का अर्थ - 'कवि का कार्य' है । श्रुति के अनुसार 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः ।' इसका अर्थ है 'काव्य उस मनीषी की सृष्टि है जो स्वयं संपूर्ण और सर्वज्ञ हो ।' महाकाव्य के तत्व, स्वरूप और आकार आदि पर भारतीय और पाश्चात्य विचारकों में अंतर है । साकेत काव्य में दोनों प्रकार के महाकाव्यों का प्रभाव पड़ा है अतः साकेत का मूल्यांकन करने से पूर्व पारंपरिक काव्य शास्त्रीय समीक्षा सिद्धान्तों का विवेचन करना पड़ेगा ।

'साहित्य दर्पण' के रचयिता आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' यह काव्य की परिभाषा है । इस परिभाषा के अनुसार रसमय वाक्य ही काव्य है । जो तत्व सहृदयों के मन को आनन्द से आह्लादित कर दे वही तत्व काव्य में रस माना जाता है ।

पंडित भामह, राजा जगन्नाथ, आचार्य आनन्दवर्धन आदि प्रभूति विद्वान् और अन्य शास्त्रकारों ने भी काव्य की परिभाषा के संदर्भ में व्यापक और विस्तृत चर्चाएँ की हैं ।

कुछ शास्त्रकारों ने 'महाकाव्य' संबंधी परिभाषाओं में काव्य के स्थूल रूप, कथानक कलेवर, पात्र और चरित्र-चित्रण आदि का भी स्पष्ट निर्देश किया है ।

आचार्य 'दण्डी' अपने काव्यदर्शन में **'सर्ग बन्धों महाकाव्यमुच्यते'** आदि कहकर महाकाव्य की जो परिभाषा प्रस्तुत करते हैं उसके अनुसार सर्ग बद्ध कथा रचना, जो नमस्कार, आशीर्वाद आदि शुभ वाक्यों से प्रारंभ हो, जिसके अध्ययन से धर्मार्थ-काम-मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि हो, किसी महान अभिमान या युद्ध अथवा विजय का वर्णन हो, उदात्त गुणों से युक्त श्रेष्ठ कुलोत्पन्न नायक का चित्रण हो, विभिन्न छन्दों में रचना हो, सर्ग के समापन में छंद परिवर्तन तथा आगे आनेवाले सर्ग की कथा का संकेत हो इत्यादि तत्वों से युक्त काव्य दंडी के अनुसार 'महाकाव्य' की श्रेणी में आता है ।

8.3. महाकाव्य का लक्षण और तत्व

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए ।
2. सर्गों की संख्या कम से कम आठ या इससे अधिक होनी चाहिए ।
3. प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग होना चाहिए लेकिन सर्ग के अंत में छंद में परिवर्तन होना चाहिए और अगले सर्ग की कथा की सूचना होना चाहिए ।
4. प्राकृतिक दृश्यों, ऋतु संबंधी वातावरण की वर्णन हो चाहिए ।

उदा : सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, मध्याह्न ।

5. महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से होना चाहिए ।
6. कथावस्तु सामान्य जन से संबंद्ध न होकर, लोक प्रख्यात, महदाकार और क्रमबद्ध हो ।
7. नायक अथवा मुख्य पात्र धीरोदात्त गुणों से संपन्न होना चाहिए और वह उच्च कुलीन होना चाहिए ।
8. श्रृंगार, वीर, शांत रसों में किसी एक रस का प्रधानता से परिपाक होना और बाकि रस गौण रूप में होना चाहिए ।
9. महाकाव्य का लक्ष - धर्म, अर्थ, काम, मोक्षफल, चतुष्ट्य होना चाहिए ।
10. शैली विस्तार-गर्भा, अलंकार-सज्जित तथा गांभीर्य पूर्ण होना चाहिए ।

प्रमुख रूप से जो तत्व ऊपर दिए है, जहाँ एक साथ विद्यमान हो, तब उस कृति का 'महाकाव्य' कह सकते हैं ।

8.3.1. शीर्षक की नामकरण

मैथिलीशरण गुप्तजी ने अपने इस ग्रंथ का नाम स्थान-विशेष के आधार पर साकेत रखा । गुपतजी के पहले भी स्थान-विशेष के आधार पर ग्रंथ का नामकरण करने की परंपरा चल निकली थी ।

बंगाला में नवीचन्द्र सेन स्थान विशेष पर नामकरण में हमेशा रुचि लेते थे ; गुप्तजी पर उनका प्रभाव था । कवि दिनकर भी 'कुरुक्षेत्र' नाम से एक स्थान-विशेष काव्य लिख चुके थे । गुप्तजी 'साकेत' को ही अयोध्या एवं अवध मानते हैं -

'क्या ही विचित्रता चित्रकूट ने पायी ।
संपूर्ण अयोध्या जिसे खोजती आयी ।'

जब साकेतवासियों ने चित्रकूट में पहुँचते है तब अयोध्या का लक्षणा से अर्थ अयोध्यावासी हैं । गुप्तजी साकेत, अयोध्या और अवध तीनों को एक मानते हैं । अयोध्या त्रेतायुग के बाद की नगरी नहीं है -

'स्वर्गोपरि साकेत, राम का धाम तू,
रक्षित रख निज उचित अयोध्या नाम तू ।'
(पंचम सर्ग)

'हो जाये अवधि मय अवध अयोध्या अबसे,
(अष्टम सर्ग)

x x x x x

'अवध की ओर अपना कर त्याग से,
वह तपोवन सा प्रभु ने किया ।' (नवम सर्ग)

गुप्तजी साकेत के अंतर्गत संपूर्ण अयोध्यावासियों का अर्थ को भी समाहित करते हैं । समस्त अयोध्यावासी, साकेत-समाज सभी इसी के अंतर्गत आता है ।

'चल चपल कलम निज चित्रकूट चल देखें ।
प्रभु चरण-चिह्न पर सफल भाल-लिपि लेखें ।
संप्रति साकेत समाज नहीं वहीं हैं सारा,
सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा ।'

साकेत को लक्ष करते हुए समीक्षक-प्रवर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है - 'साकेत की सीमा में गुप्तजी चित्रकूट को भी सन्निविष्ट करते हैं । .... साकेत तो प्रागैतिहासिक नगरी थी, जो त्रेता तक इस धरातल पर रही, तदुपरांत स्वर्ग चली गयी और उसके स्थान पर 'अयोध्या' की सृष्टि हुई । साकेत-नगरी के अतिरिक्त किसी साकेत-प्रान्त की कल्पना ऐतिहाकसक नहीं है ।' वाजपेयी का मत भी 'साकेत' शीर्षक के विपक्ष में हो जाता है ।

श्री रामस्वरूप दुबे का विचार है कि गुप्तजी चित्रकूट को भी 'साकेत' की सीमा के अंतर्गत मानते हैं । उनका तर्क यह नहीं है कि चित्रकूट अयोध्या का एक अंग है अपितु संपूर्ण साकेत-समाज वही होने के कारण उन्होंने साकेत के अंगर्तत उस प्रसंग को लिया ।

साकेत शीर्षक या नामकरण के बारे में विद्वानों में मत भेद हैं ।

श्री शंभूप्रसाद बहुगुण का विचार है - 'साकेत में पाठकों का ध्यान सबसे पहले ग्रंथ के नाम की ओर आकृष्ट होता है । कवि ने इसे साकेत कहा है । ग्रंथ के कथानक को देखकर रामायण कथानक की याद आ जाती है । 'साकेत' एक प्रकार से 'मानस' तथा 'रामचंद्रिका' का अल्हैती सूरसागरीय छायारूप है । रामचरित का जो गान 'मानस' में किया गया है, 'रामचंद्रिका' में अलंकारों और छंदों का जो चमत्कार दिखाया गया है, सूरसागर में जो गोपी - उद्‌भव संवाद चित्रित हुआ है उसी का दूसरे रूप में चित्रण 'साकेत' में है, कुछ घटनाएँ बढ़ा दी गयी हैं और कुछ अपेक्षाकृत बढ़ा दी है और कुछ को इतना संक्षिप्त कर दिया गया है कि घटना का गला-सा घुट गया है । फिर भी राम से संबंध रखनेवाली घटनाओं का उल्लेख किया है, यद्यपि राम के चरित्र की प्रधानता कहीं भी नहीं है ।'

डॉ.नगेन्द्र 'साकेत' के नामकरण के विषय में यह मन्तव्य दिया है - 'स्थान-ऐक्य का साकेत की कथावस्तु में बड़ा सफल प्रयोग है और साथ ही साकेत का नाम भी पूर्णरूप से सार्थक होता है । .... साकेत में जाकर राम सीता की कहानी प्रधानतः उर्मिला की कहानी बन जाती है, उसी रूप में उसका विकास और संघटन (राम-कथा की पृष्ट भूमि पर) होता है ।'

कुछ विद्वन शीर्षक के पक्ष में है और कुछ विपक्ष में भी । पर यह बात सत्य तो है कि इस ग्रन्थ का नाम 'साकेत' सर्वथा उपयुक्त है ।

गुप्तजी का उद्देश्य उपेक्षिता नारियों के महान चरित्र पर प्रकाश डालना था । उर्मिला, कैकेयी, माण्डवी, सुमित्रा आदि पर कवि ने प्रकाश डाला है ।

गुप्तजी ने वैष्णव भक्त होने के नाते राम के चरित्र पर प्रकाश डाला है । इसलिए उन्होंने लिखा है -

'राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाये सहज संभाव्य है ।'

राम का चरित्र अवश्य गाया है किन्तु प्रसंग वश । अगर गुप्तजी का अभीष्ठ यदि सिर्फ राम-कथा गाना ही थी, तो 'रामचरितमानस' या 'रामचंद्रिका' की तरह राम-जन्म से कथा का आरंभ करते, किन्तु गुप्तजी ने कथा का आरंभ 'साकेत' के वर्णन से किया है और सर्वप्रथम नायिका उर्मिला को सामने लाया हैं । कथा का आरंभ उर्मिला से शुरू होकर अंत भी उर्मिला-लक्ष्मण मिलन प्रसंग में हुआ है ।

कुछ विद्वानों के मत है कि यदि कथानक उर्मिला से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध है तो फिर ग्रंथ का नाम 'उर्मिला' अथवा 'उर्मिला संताप' आदि क्यों नहीं रखा गया ?

इसका कारण यह है कि गुप्तजी ने यद्यपि उर्मिला के चरित्र को प्रमुखता दी है किंतु उसका चरित्रांकन ही उनका लक्ष्य नहीं था अपितु अन्य उपेक्षाताओं चरित्र-कैकेयी, मांडवी, सुमित्रा आदि के प्रति भी उनकी सहानुभूति थी । वातावरण की आवश्यकता के हेतु संपूर्ण साकेत का संयोजन आवश्यक था ।

गुप्तजी ने संपूर्ण कथा को साकेत के अंतर्गत ही सन्निहित कर दिया है । राम सात सर्गों तक साकेत में रहें, फिर उनसे संबंध घटना-क्रम कम होकर उर्मिला की ओर उन्मुक्त हो जाता । आगे की कथा भी साकेत से बाहर नहीं जाती । शूर्पनखा की नासिका-छेदन की कथा को एक व्यापारी ने साकेत में सुना देते हैं । लक्ष्मण की शक्ति और मूर्छा तक की कथा हनुमान सुनाते हैं । आगे की कथा वशिष्ठजी योग दृष्टि से दिखाते हैं । इसका मतलब यह हुआ कि सभी घटित-घटनाएँ सोत की हैं, इसी से साकेतवासियों की रण-सज्जा की सुन्दर और मार्मिक चित्रण करके मांडवी और सुमित्रा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है ।

श्री रामस्वरूप दुबे का कथन द्रष्टव्य है - 'उर्मिला की दशा और भावनाओं का वर्णन करने के लिए, उसका चरित्र अधिकाधिक प्रकाश में लाने के लिए यह आवश्यक था कि उर्मिला की गतिविधि

पर निरंतर दृष्टि रखी जाये । उसके आनन्दोच्छ्वासों आहों और आँसुओं का यथातथ्य वर्णन किया जाये । ऐसा करना तभी संभव था, जब कवि उर्मिला के दिन-रात के निवास स्थान को केन्द्र बनता । उर्मिला का साथ भी किसी समय न छूटे, इसलिए कवि जब सब साकेत-समाज के साथ चित्रकूट गया तब भी उर्मिला को साथ ही ले गया ।'

'साकेत' नाम की उपयुक्तता के विषय में स्वयं श्री मैथिलीशरण गुप्त के विचार भी उल्लेखनीय हैं । वह लिखते हैं - **'मैंने अपनी रचना का नाम साकेत रखा है । इससे मुझे उसमें सब के दर्शन की सुविधा मिल गयी है । ..... यह सुविधा मुख्यता उर्मिला की अनुभूति और अपनी रचना में कुछ नवीनता की इच्छा पर ही साकेत का अस्थित्व है ।'**

यदि ऐसा माना जाये कि गुप्तजी वैष्णव भक्त होने के नाते राम-कथा का गाना करना था तो भी 'साकेत' नाम सर्वथा उपयुक्त हैं । क्योंकि राम 'साकेत' में समाहित हो गया है और साकेत राम में । जब दोनों एक ही है तो भिन्न कैसे ? राम स्पष्ट कहते है -

'राज्य जाये, मैं आप चला जाऊँ कहीं,
जाऊँ अथवा लौट यहाँ आऊँ नहीं ।
रामचन्द्र भव-भूमि अयोध्या का सदा,
और अयोध्या रामचंद्र की सर्वदा ।'

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का नाम 'साकेत' सर्वथा उपयुक्त है ।

8.4. पाश्चात्य मतानुसार महाकाव्य

भारत की भाँति विद्वानों ने विदेशों में भी काव्यशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया है । यहाँ Epic Poetry नाम से इस विद्या को अभिहित किया गया है । Aristole अरस्तू के अनुसार उसके मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं -

1. It is narrative in form massive and degnified.
2. The plot manifestly ought to be constructed on dramatic principles.
3. It is an imitation in verse of characters of a higher type.
4. It should have for its subject and single action, whole and complete with begining middle and end.
5. It must be simple or complex, ethical or pathetic.
6. Employs a single metre-state best and most massive.
7. The element of wonderful has wider (than drama) scope in epic poetry.

अब हमें देखना है कि 'साकेत' किस सीमा तक इन तत्वों और परिभाषाओं की परिधि में आता है ।

1. साकेत बारह सर्गों का महाकाव्य है और समीक्षा की दृष्टि से यह तथ्य - 'साकेत को महाकाव्य' सिद्ध करता है । क्योंकि शास्त्रीय मान्यतानुसार महाकाव्य कम से कम आठ सर्ग होनी चाहिए जब कि 'साकेत' बारह सर्गों में विभक्त है ।
2. 'साकेत' की कथा सर्ग बद्ध है ।
3. छन्दों के समायोजना की दृष्टि से भी 'साकेत' महाकाव्य हैं । प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का उपयोग हुआ है और सर्गांत में छंद का परिवर्तन भी है ।
4. साकेत में प्राकृतिक दृश्यों का भी यथा स्थान वर्णन हुआ है । महाकाव्य के आरंभ में ही साकेत नगरी से हुआ है -

   'देख लो साकेत नगरी है यही,
   स्वर्ग से मिलने धारा से जा रही ।'

   इसके अतिरिक्त संध्या, प्रभात, षड्ऋतु आदि वर्णन तथा यात्रा, संग्राम, विवाह आदि का यथास्थान वर्णन है ।
5. 'साकेत' का आरंभ मंगलाचरण से किया गया है । आरंभ में ही कवि ने गणेशवन्दना दी है और फिर काव्य का आरंभ किया है ।
6. 'साकेत' की कथावस्तु सुप्रसिद्ध तथा लोक-प्रख्यात है ।

महापुरुष भगवान राम की कथा है वह ऐसा कथानक है जिससे भारतीय जन-मानस भली-भाँति परिचित है । कवि ने मुखपुठ में लिखा है -

'राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाये सहज संभाव्य है ।'

7. 'साकेत' महाकाव्य श्रृंगार रस प्रधान काव्य है । श्रृंगार में संयोग और वियोग दोनों रूपों का चित्रण हुआ है । वीर और करुण रसों की भी यथा स्थान दिया गया है ।

8. पुरुषार्थ सिद्धि की दृष्टि से 'साकेत' 'महाकाव्य' का पूरा प्रयास ही धर्म की सिद्धि हेतु है । श्रीराम का वनगमन और लक्ष्मण तथा सीता द्वारा उनका अनुगमन धार्मिक मान्यताओं की स्थापना हेतु ही अनुकरणीय आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है ।

9. नायक के विचार में वाद-विवाद है । 'राम' को कुछ विद्वानों ने नायक माना है । अगर राम नायक है तो सीता नायिका होनी चाहिए । लेकिन साकेत में उर्मिला ही नायिका है । नायिका के पति लक्ष्मण को नायक कहना चाहिए । लेकिन वह धीरोदात्त नहीं बल्कि वह धरोद्धत्त है । नायक के विचार में बड़ा ही विवाद है । कुछ विद्वान उर्मिला को ही Lady Hero मानते हैं । इस प्रकार 'साकेत' में महाकाव्योचित अधिकांश लक्षण मिलते हैं । फिर भी साहित्य-लक्षणकार 'महाकाव्य' को जिस रूप में देखते.है उनका 'साकेत' में प्रायः अभाव है ।

आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'साकेत' महाकाव्य न होकर एक बड़ा प्रबंध काव्य है ।'

डॉ.नगेन्द्र के अनुसार - 'साकेत जीवन काव्य' के अंतर्गत मानते हैं ।

डॉ.शंभूनाथ सिंह ने साकेत को 'बृहत्प्रबंध काव्य' मानते है ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'साकेत' को महाकाव्य ही मानते हैं ।

नन्द्रदुलारे वाजपेयी के अनुसार - 'साकेत महाकाव्य ही नहीं, आधुनिक हिन्दी का युग प्रवर्तक महाकाव्य है ।'

पं.विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'साकेत को एकार्थ काव्य' कहते हैं ।

डॉ.कमलाकांत पाठक और उमाकांत गोयल 'साकेत' को महाकाव्य मानते हैं ।

डॉ.शिवबालक शुक्ल ने लिखा हैं - 'मैं उर्मिला को साकेत के नायक पद पर आसीन समझता हूँ । उसके महत्व को किसी प्रकार कम नहीं किया जा सकता ।' वास्तव में नायक तो एक पद है जिसके सहारे कथा-सूत्र आगे बढ़ता है इसमें चाहे वह व्यक्ति पुरुष हो या स्त्री ।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि सभी स्वीकृत मानदंडों के आधार पर 'साकेत' एक महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित होता है ।

8.5. 'साकेत' का कला-पक्ष - एक विवेचन

काव्य के कला-पक्ष पर विचार करने के लिए भाषा, शैली, अलंकार-विधान और छंद योजना अत्यंत आवश्यक है ।

भाषा - गुप्तजी की भाषा खड़ीबोली हिंदी है । इसका रूप हम 'साकेत' में देखते है । साकेत की भाषा के विषय में डॉ.नगेन्द्र कहते हैं कि 'साकेत' की भाषा में खड़ीबोली का अत्यंत शिष्ट और प्रौढ़ रूप मिलता है । गुप्तजी ने द्विवेदीय भाषा को सबसे पूर्ण काव्योचित रूप प्रदान किया । साकेत में आकर उसमें शक्ति और अलंकृत भी आ गयी .... परंतु अलंकृत और सांस्कृतिक होने पर भी उसमें खड़ीबोली का अपनापन नष्ट नहीं होने पाया ।'

यद्यपि कहीं-कहीं भाषागत असमर्थता एवं असंगतता के उदाहरण भी दिखायी देते हैं, किंतु 'एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमजतीन्दोः किणेष्विवाङकः'' के आधार पर वे नगण्य हैं ।

8.6. गुप्तजी की भाषा

1. संस्कृत शब्दों की प्रधानता ।
2. प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग ।
3. मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्राचुर्य ।
4. शब्द शक्तियाँ ।
5. अनुचित तुकादि की योजना

8.6.1. संस्कृत शब्दों की प्रधानता

गुप्तजी भारतीय संस्कृति के समर्थक होने के नाते उनकी भाषा में संस्कृत पदावली की प्रधानता है । संस्कृत शब्दों में भी उसके तद्भव रूपों की प्रधानता है । एक-एक स्थान पर अप्रचलित तत्सम् शब्द भी प्रयुक्त है । **उदा** :- आल्य, अरुदत, अपत्य, वीक्ष्य, निबड़, त्वेष आदि । गुप्तजी ने संस्कृत शब्दों को भी खड़ीबोली की प्रकृति में ढालने का प्रयत्न किया है । **उदा** :- लाक्ष्यमण्य, मनोश्रता, सारल्य, प्रकटित, आरुण्य आदि ।

8.6.2. प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग

'साकेत' में एकाध स्थान पर उर्दू-फारसी शब्दों का भी प्रयोग हिन्दी-प्रकृति के अनुरूप प्रयोग हुआ है । प्रान्तीय शब्दों में धाड, धडाम, डिडकार, तत्ती, नेक, हेरना आदि । इन शब्दों का प्रयोग से भाषा में माधुर्य एवं प्रभाव की कमी नहीं हुई है, फिर भी भाषा की शुद्धता की दृष्टि से देखा जाय तो आघात पहुँचा है ।

'कहकर हाय धड़ाम गिरी' - यहाँ कवि की असमर्थता का द्योतक है ।

8.6.3. मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्राचुर्य

'साकेत में गुप्तजी ने पर्याप्त मात्र में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । प्रयोग इसलिए किया गया है भाषा में निखार लाने और अर्थवत्ता बढ़ाने और लाक्षणिक वकता के वैभाव में वृद्धि करने के वास्ते । **उदा** :- पैर पलोटना, लाड़-लड़ाना, मान मनाना,

बाट जोहना, और पीना, साँप को छेड़ना, छाती फटना, आहें भरना आदि सुन्दर मुहावरों का प्रयोग हुआ है । 'हो बोये वह काटे' 'यहाँ आग और वहाँ पाना' जैसी लोकोक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं ।

8.6.4. शब्द शक्तियाँ

अ. पेट भर था किन्तु भूख तब भी रही ।
एक ग्रास में तृप्त न कर दूँ तो सही ।
रूखा-सूखा खान-पान भी इष्ट है ।
भाता किसको सदा मिष्ट ही मिष्ट है ? (अभिधा)

आ. जहाँ हाथ में लोह वहाँ पैरों में सोना । (लक्षणा)

इ. क्या क्षण-क्षण मैं चौंक रही मैं ? (व्यंजना)

8.6.5. अनुचित सुकाद की योजना

'साकेत' की भाषा में कहीं-कहीं अनुपयुक्त तुकबंदी, छंदाग्रह से निरर्थक शब्दों के प्रयोग हुआ है ।

8.6.6. शैली

'साकेत' की शैली गीतात्मक या नाट्यात्मक न होकर प्रबंधात्मक है । 'साकेत' में वर्णन को बहुत ही महत्व दिया है, फिर भी कवि कहीं-कहीं गीतों का सहारा लेता है और कहीं नाटकीय रूप भी दिया है ।

'साकेत' की शैली में तो प्रवाहमयता भावानुगामिता, आकर्षण, रोचकता, समयानुकूल प्रभावशालिनी सभी हैं ।

प्रेम रस वर्णन में वह सरस और सुकुमार शैली का प्रयोग हुआ है । युद्धादि वर्णन में वेदना-प्रचण्डता तथा प्रखरता से परिपूर्ण हो जाती हैं - उर्मिला के वियोग वर्णन में वेदनामय करुण-धारा से सिक्त हो उठती है तो दशरथ-मरण के पश्चात् नगर-वर्णन के अवसर पर अपार निषादमयता की भूमिका प्रस्तुत है ।

दल बदल भिड़ गए, धारा धँस चलीधमक से ।
भड़क गया कड़क तड़क से, चमक से ।।

'साकेत' में निम्नलिखित शैलियाँ प्रयुक्त हुआ है ।

8.6.7. चित्रात्मकथा

'साकेत' में दृश्य-चित्र, रूप-चित्र, मुद्रा-चित्र आदि के अनेक ऐसे स्थल में हैं जहाँ कवि की सौंदर्य विधायिनी चित्रात्मक शैली अपनी समग्र प्रभावशीलता के साथ उभर उठी है । 'साकेत' यद्यपि एक गंभीर कृति होने पर भी कुछ स्थानों में हास्य-विनोद का अवसर दिया है । उर्मिला-लक्ष्मण का प्रेमालाप, राम-सीता विनोद अच्छा हास्य-विनोद बन पड़ा है ।

8.6.8. संवादात्मक वैशिष्ट्य

प्रबंध-काव्य में संवादों का विशेष महत्व होता है । इससे काव्य में स्वाभाविकता गतिशीलता, रसात्मकता आदि का विकास होता है । 'साकेत' में ऐसे स्थलों का अपना महत्व हैं, जहाँ संवदों का सौन्दर्य अपनी छटा बिखरा रहा है ।

8.6.9. अलंकार विधान

'साकेत' में प्रत्येक सर्ग में नवीन अलंकार हैं । सर्वाधिक अलंकारों का प्रयोग नवम सर्ग में हुआ है । श्री गिरिराजानन्द शुक्ल गिरीश ने लिखा है - 'गुप्तजी के समस्त ग्रन्थों में 'साकेत' अत्यंत अलंकार युक्त है ।'

श्री त्रिलोचन पाण्डेय ने 'साकेत' में प्रयुक्त अलंकारों को तीन दृष्टियों से देखा हैं । यथा -

1. जहाँ केवल अलंकार पर ही कवि की दृष्टि रही हैं, अतः अर्थ क्लिष्ट हो गया है ।
2. जहाँ पूर्ण वर्णन है तो अलंकारपूर्ण पर स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है ।

3. जहाँ काव्य-प्रवाह के बीच-बीच में स्फुट अलंकार आ गये हैं ।

8.6.10. छंद-विधान

वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग 'साकेत' में गुप्तजी ने किया है । वार्णिक-छन्दों को शास्त्रीय पद्धति के अनुसार लिखी गए है, जबकि मात्रिक छन्दों में से कई छंद ऐसे भी है, जिनको शास्त्रीय न कहकर कवि निर्मित कहा जा सकता है । कवि ने कुछ छन्द आधुनिक प्रगति शैली पर भी रचे गए हैं । प्रत्येक सर्ग में कवि ने महाकाव्य के साहित्य शास्त्र के अनुसार एक ही छंद का प्रयोग किया है, तथा सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन भी किया है । लेकिन साकेत के नवम सर्ग में अनेक छंदों को प्रयोग किया गया है ।

कहीं-कहीं वार्णिक छन्दों में अवश्य दोष आ गया है । **उदा** :- पिऊँगा, खाऊँगा, पहनूँगा, सव यरूँ । यह शिखारिणी छंद है । इसमें 17 के स्थान पर 16 वर्ग ही है, लेकिन ऐसा दोष अत्यल्प है ।

कवि गुप्तजी ने विभिन्न स्त्रोतों से सामग्री का संचय करके 'साकेत' में सुन्दर एवं सजीव कलात्मक रूप को निखार दिया है । कला के इस प्रखर और प्रकष्ठ रूप को देखकर कवि की सराहना की जा सकती है ।

'साकेत' में जीवन की विविधता और गहनता के चित्र भरे पड़े हैं ।

8.7. बोध प्रश्न

1. सिद्ध कीजिए कि ''साकेत'' में महाकाव्योचित सभी तत्व/गुण पाये जाते हैं ? एक लेख लिखिए ।
2. ''साकेत'' शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए
3. भाव-पक्ष और कला-पक्ष पर एक निबंध लिखिए ।

8.8. सहायक पुस्तकें

1. साकेत एक अध्ययन - डॉ.नगेन्द्र
2. भारतेन्दु और भारतीय नव जागरण - डॉ.शिवकुमार मिश्रा
3. मैथिलीशरण गुप्त - रेवती रमण
4. मैथिलीशरण गुप्त : एक मूल्यांकन - सं.राजीव सक्सेना
5. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण -रामविलास शर्मा
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

NOTES

NOTES

NOTES

[illegible]ರ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4-060/2013-2014 ದಿನಾಂಕ : 24-09-2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು-10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1,200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

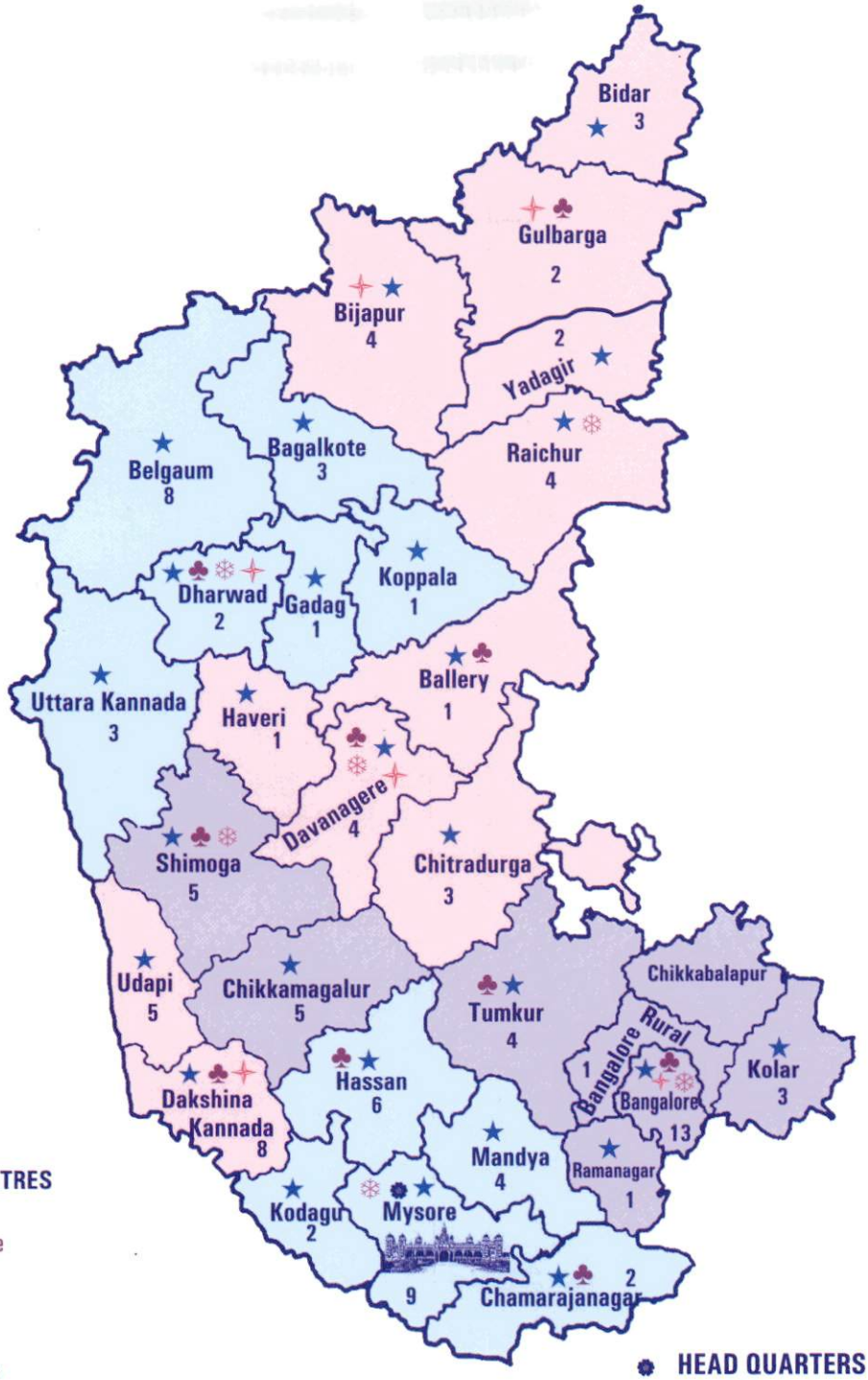

♣ REGIONAL CENTRES

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

✹ HEAD QUARTERS

★ Total Study Centres : 111

♣ Regional Centres : 10

❄ B.Ed Study Centres : 10

✦ M.Ed Study Centres : 08

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

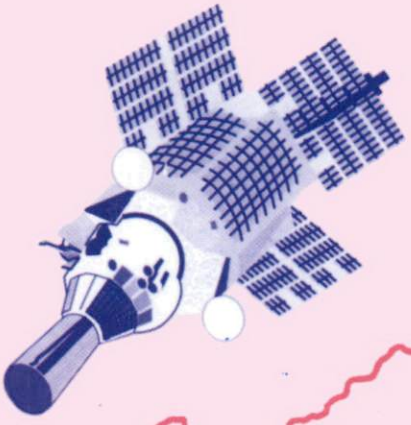

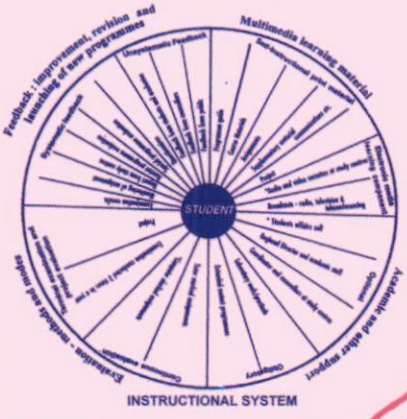

INSTRUCTIONAL SYSTEM

INSTRUCTIONAL SYSTEM